णाणमेव पवज्जा

विद्यावदान

उपाध्याय प्रज्ञसागर मुनि

प्रकाशक

कुन्दकुन्द भारती

नई दिल्ली

गुरु का स्वरूप

''देहेनिर्ममता गुरुविनयता नित्यं श्रुताभ्यासता,
चारित्रोज्ज्वलता महोपशमता संसारनिर्वेगता।
अन्तर्बाह्यपरिग्रहत्यजनता धर्मज्ञता साधुता,
साधो साधुजनस्य लक्षणमिदं संसारविच्छेदनम्।।''

जो देह के प्रति निर्ममता भाव रखते हैं, गुरु के प्रति विनय भाव को धारण करते हैं, नित्य ही श्रुत अभ्यास में तत्पर रहते हैं, जो चारित्र को सतत उज्ज्वल रखते हैं, जिन्होंने मोह को जीत लिया है, जो प्रतिसमय संसार से भयभीत हैं, अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह को त्याग दिया है। जो धर्म से पूर्ण और सज्जनता/सरलता सहित हैं। यही साधुओं का लक्षण कहा गया है। ऐसे साधु ही इस संसार का विच्छेद कर मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।

णाणमेव पवज्जा

विद्यावदान

उपाध्याय प्रज्ञसागर मुनि

प्रकाशक
कुन्दकुन्द भारती
नई दिल्ली

श्वेतपिच्छाचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज के स्वर्ण जयन्ती मुनि दीक्षा वर्ष के उपलक्ष्य में

लेखक : उपाध्याय प्रज्ञसागर मुनि

सौजन्य : सतीश चन्द्र जैन (SCJ), वसंत विहार, नई दिल्ली 9810081861 (M)

प्राप्ति स्थान : 18-बी, स्पेशल इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110016

भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई

"दक्षिण मध्य जैनसभा के सभापति पं. गोपालदास बरैया, मुरैना (म.प्र.) ने सन् 1914 ई. बेलगांव, कर्नाटक में एक विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए कहा था कि आज बड़े सौभाग्य का दिन है, आप महानुभावों ने मुझ तुच्छ व्यक्ति को ऐसे महान पद का सम्मान देकर मेरा गौरव बढ़ाया है। ऐसी महती सभा के सभापतित्व का भार उठाने का मेरे जीवन में यह पहला ही मौका है। कर्मभूमि के आदि में ऋषभदेव स्वामी ने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इस प्रकार तीन वर्णों की स्थापना की थी। पीछे भरतचक्रवर्ती ने क्षत्रिय वर्ण में से धर्मात्माओं को छाँटकर ब्राह्मण वर्ग की स्थापना की। उन ब्राह्मणों की सन्तान में हमारे दक्षिणवासी उपाध्ये हैं। यदि ये महाशय अपने को विद्या से भूषितकर उचित अवस्था में वानप्रस्थ तथा मुनिपद को ग्रहण करके अनेक देशों में देशाटन करते हुए धर्मोपदेश करें तो यह जैनधर्म शीघ्र ही राष्ट्रधर्म का गौरव प्राप्त कर संसार के समस्त जीवों का यथार्थ कल्याण करेगा। आज यह कहते हुए हमको बहुत हर्ष होता है कि जब से बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ हुआ है, तब से लोगों के हृदय में पक्षपात का पचड़ा निकल गया है।"

-(गुरु गोपालदास बरैया स्मृति-ग्रन्थ, पृष्ठ 212, 220)

विशेष :— उस समय पं. कालप्पा उपाध्ये (पिताश्री-परमपूज्य श्वेतपिच्छाचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज) जी मंच पर विराजमान थे। स्याद्वाद महाविद्यालय, बनारस में न्यायशास्त्र का विस्तृत रूप से पठन-पाठन होता है।

कालप्पा उपाध्ये ने स्याद्वाद महाविद्यालय, बनारस से 'न्याय विशारद' किया था। न्याय का विषय अत्यन्त गम्भीर एवं तर्कसंगत है। तीक्ष्णबुद्धि एवं आगम का गूढ़ अध्ययन करनेवाला ही न्यायशास्त्र का ज्ञाता हो सकता है। आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज के गृहस्थावस्था के पिता कालप्पा जी बचपन से ही बालक सुरेन्द्र उपाध्ये 'आचार्यश्री' को तर्क-वितर्क, वाद-प्रतिवाद के माध्यम से न्यायशास्त्र को पढ़ाया करते थे। यही कारण है कि आचार्यश्री आज न्यायशास्त्र के एक कुशल विशेषज्ञ, विचारक एवं दार्शनिक हैं। आचार्यश्री जी द्वारा किया हुआ प्रत्येक कार्य न्यायसंगत एवं युक्तिसंगत होता है। गुरु गोपालदास जी की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई, जो आज आचार्य विद्यानन्द जी के खोजपूर्ण, सत्याग्रही कार्यों का फलित जैन समाज ही नहीं अपितु पूरा देश अनुभव कर रहा है।

उपाध्याय प्रज्ञसागरजी आचार्यश्री के परम अनन्य शिष्य हैं। इन्होंने बहुत अथक प्रयास से **विद्यावदान** नामक अनमोल कृति की रचना की है। सिन्धु को एक बिन्दु में समेटने का जो यह सफल प्रयास किया है, वह सुधी पाठकों के लिए विद्या के आनन्द का स्रोत रहेगा। यह कृति श्वेतपिच्छाचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज की **50वीं मुनि दीक्षा स्वर्ण जयन्ती वर्ष** के उपलक्ष में प्रकाशित की जा रही है जो सभी मुमुक्षुओं के लिए प्रेरणादायक होगी।

—एलाचार्य श्रुतसागर मुनि

आचार्य रत्न श्री १०८ देश भुषण जी महाराज

[illegible]

मुनि विद्यानंद

समाधिवृद्धिरस्तु महन्मंगल आशीर्वाद.

प्राचीन आचार्य परंपरा में श्रमणसंस्कृति संरक्षण एवं संवर्धन हेतु आचार्य पद का स्थान सर्वप्रथम है।

मेरे शरीर आयुकर्म के उदय से रत्नत्रय आराधना में सहयोग देने में शनैः शनैः कृश हो रहा है। अब मैं उचित समझता हूँ कि अपने परम शिष्य को नियुक्त करूँ, जो मेरे पश्चात् मेरे आसन पर पदासीन हो और धर्म प्रभावना प्रभावित करके श्री जिनशासन संवर्धन एवं श्रमणसंस्कृति का संरक्षण करें मैंने निर्णय लिया है कि मेरे पश्चात इस आचार्य पद को तुम धारण करोगे और इस पद की गरिमा को बना-पार ही नहीं रखोगे, अपितु समस्त समाज को ठीक दिशा निर्देश देकर और संघ को कुशलता पूर्वक संचालित कर अपना और मेरा नाम चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शांतिसागरजी महाराज की परंपरा के अनुरूप ही बना-कर रखोगे।

इत्याशीर्वाद

[illegible]

तीर्थ और तत्व का समन्वय

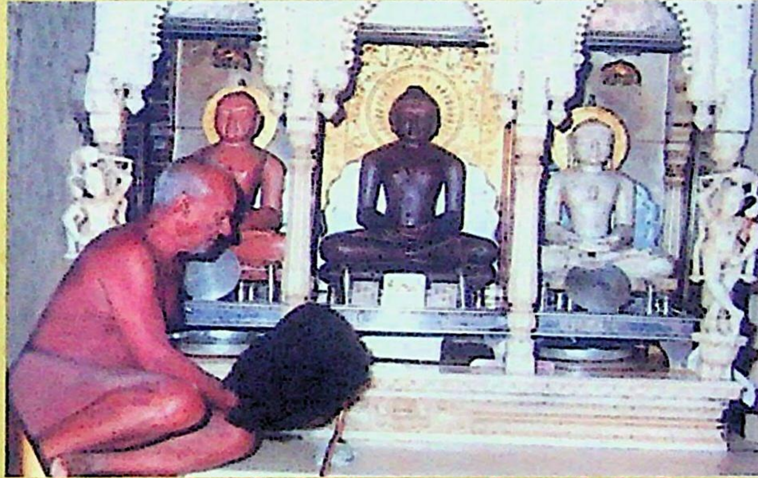
"जदि जिणसमयं पढिज्जह, तो मा ववहारणिच्छयं मुंचह।
एक्केण विणा छिज्जदि, तित्थं अण्णेण उण तच्चं॥"

–(आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार टीका, पृष्ठ 26)

जो भव्यात्मा जिनशासन का पठन-पाठन करना इष्ट समझता हो तो व्यवहार धर्म और निश्चय धर्म —दोनों नयों को मत छोड़ो; क्योंकि व्यवहार के बिना तो तीर्थ और निश्चय के बिना तत्त्व की व्यवस्था ही बिगड़ जाएगी।

विद्यावदान

विश्व की अनेक संस्कृतियों में जैन संस्कृति का एक विशिष्ट एवं गौरवपूर्ण स्थान ही नहीं, अपितु भारत की महिमा गरिमा में यह प्राण-शक्ति के समान है। यह अध्यात्म प्रधान संस्कृति है। यम, नियम, व्रत, संयम, स्वाध्याय की संस्कृति है। प्रस्तुत संस्कृति का यह शाश्वत ध्येय रहा है कि जीवन का लक्ष्य भोग नहीं योग है, संग्रह नहीं त्याग है, राग नहीं विराग है, अंधकार नहीं प्रकाश है, मृत्यु नहीं अमरता है। जैन संस्कृति के संरक्षण, संवर्द्धन एवं सम्प्रसारण में जो महत्त्वपूर्ण योगदान आदिनाथ से लेकर महावीर पर्यंत तक समस्त तीर्थंकरों ने दिया वह अकथनीय है। वर्तमान में भी भगवान महावीर स्वामी की आचार्यत्व परम्परा अविरल रूप से प्रवहमान है। धरसेनाचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य, जिनसेनाचार्य, वीरसेनाचार्य, उमास्वामी अकलंकदेव, समन्तभद्र स्वामी, यतिवृषभाचार्य, गुणभद्राचार्य, अमितगति आदि अनेक महान आचार्य हुए, जिन्होंने जैनमत को एक अच्छा नेतृत्व देने की भूमिका में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, वह एक अद्वितीय एवं चिरस्मरणीय है।



अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी में भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा के दर्शन करते हुए पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज

आचार्य का स्वरूप

जिनशासन में आचार्य का स्वरूपादि क्या होता है, इसका विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है-

साचार श्रुतजलधीन्प्रतीर्यशुद्धोरुचरणनिरतानाम्।
आचार्याणां पदयुगकमलानि दधे शिरसि मेऽहम्।। -(पंचगुरुभक्ति, 3)

जो पंचाचार सहित द्वादशांग श्रुतज्ञानरूपी समुद्र के पार हो गए हैं, निर्दोष तथा उग्र तपश्चरण के पालने में सदा तत्पर रहते हैं, ऐसे आचार्यों के दोनों चरण कमलों को मैं अपने मस्तक पर धारण करता हूँ। प्राकृत में भी यही कहा है-

पंचहाचार पंचग्गि संसाहया, बारसंगाइसुअ जलहि अवगाहया।
मोक्खलच्छीमहंती महंते सदा, सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासंगया।।

-(पंचगुरु भक्ति, 3)

आचार्य परमेष्ठि के स्वरूप को और भी स्पष्टीकरण करते हुए आचार्य नेमिचन्द्र कहते हैं-

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजदि सो आइरियो मुणी झेओ।। -(द्रव्यसंग्रह, 52)

जो दर्शनाचार, ज्ञानाचार की प्रधानता से युक्त हैं। वीर्याचार, चारित्राचार तथा श्रेष्ठ तपाचार में अपने को तथा शिष्यों को लगाते हैं, वे आचार्य ध्यान करने योग्य हैं। और भी-

छत्तीसगुणसमग्गे पंचविहाचारकरणसंदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले धम्माइरिये सदा वन्दे।। -(आचार्यभक्ति, क्षेपक, 2)

जो 36 मूलगुणों से पूर्ण हैं, पंच प्रकार के आचार का स्वयं आचरण करते-कराते हैं, शिष्यों पर अनुग्रह करने में जो निपुण हैं, ऐसे धर्माचार्य की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

जो श्रुतरूपी समुद्र के तीर को प्राप्त हैं, स्वमत-परमत के विचार करने में जिनकी बुद्धि अत्यंत प्रखर है- **स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।** सम्यक्चारित्र, तप जिनकी निधियाँ हैं,

जिनके पास पुष्कल/बहुत मात्र में गुण हैं; जो व्रतरूपी मंत्रों से कर्मों का होम करते हैं, ध्यानरूपी अग्नि में कर्मरूपी ईंधन को देते हैं, षडावश्यक क्रियाओं में सदा तत्पर रहते हैं, तपरूपी धन जिनका सच्चा धन है, पुण्य कर्मों में कुशल हैं, अठारह हजार शीलों की चुनरिया जिनका वस्त्र है, मूल व उत्तर-गुण जिनके पास शास्त्र हैं, सूर्य और चन्द्र का तेज भी जिनके सामने लज्जित हो रहा है, मोक्षमंदिर के द्वार को खोलने में शूर हैं, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शन के स्वामी हैं, सम्यक्चारित्र के पालने में समुद्र के समान गंभीर है, भव्यों को मुक्तिमार्ग का उपदेश देने वाले हैं, पूर्णज्ञान, शुद्ध आचरण, दूसरों को उपदेश देने में प्रवृत्त, भव्यजीवों को समीचीन मार्ग में लगाने में विशेष पुरुषार्थ करना, विद्वानों में पूज्य, मार्दव भावी, कोमलता, निस्पृहता, जो बुद्धिमान हैं, समस्त शास्त्रों के रहस्य के ज्ञाता हैं, लोक-व्यवहार के उत्तम रीति से जानने वाले अथवा लोक-स्थिति के प्रकट ज्ञाता है- **प्रव्यक्तलोकस्थितिः।** संसार में निस्पृह हैं, समयानुसार द्रव्य-क्षेत्र-काल के परख/ शुभाशुभ को जानने में प्रतिभा-सम्पन्न, रागद्वेष रहित प्रश्नों के उत्तर पहले ही जिनके मन में तैयार रहते हैं- **प्रागेव दृष्टोत्तरः।** किसी के द्वारा बहुत प्रश्नों के पूछे जाने पर भी जिन्हें कभी क्रोध नहीं आता, सब लोगों पर जिनका प्रभाव है, दूसरों के मन को जो हरने वाले हैं- **परमनोहारी।** धर्मकथा को कहने वाले हैं, गुणों की खानि हैं, अच्छी तरह स्पष्ट व मधुर वाणी जिनकी है- **प्रस्पष्ट मिष्टाक्षरः।** ऐसे गुणों से युक्त आचार्य परमेष्ठी होते हैं। और भी कहा है-

सम्यग्दर्शनमूलं ज्ञानस्कंधं चरित्रशाखाद्यम्।
मुनिगणविहगाकीर्णमाचार्य महाद्रुमम् वन्दे।। -(आचार्यभक्ति, क्षेपक, 10)

सम्यग्दर्शन जिसकी जड़ है, ज्ञान जिसका स्कन्ध है, चारित्ररूपी शाखा से जो युक्त हैं, मुनिसमूहरूपी पक्षियों से जो युक्त हैं, उन आचार्य रूप महावृक्ष को मैं नमस्कार करता हूँ।

शिवाचार्य भगवती आराधना में कहते हैं-

मुक्ताहारपयोधरनिशाकर वासराधीश्वरकल्प महीरुहादय इव प्रत्युपकारानपेक्षा-नुग्रहव्यापृताः, निर्वाणपुरपरिप्रापणक्षमे मार्गे निर्मेलेस्थिताः परानपि विनतान्विनेया-

न्प्रवर्तयन्तः आयतातिधवल-ज्ञानपृथुलदर्शनपक्ष्मलेक्षणाः, कुलीना, विनता, विभया, विमाना, विरागा, विशल्या, विमोहा, वचसि, तपसि, महसि वाऽद्वितीया इति भाषणं सूरिवर्णजननम्।

-(गाथा-टीका 46/91)

अर्थात् आचार्य मोती का हार, मेघ, चन्द्रमा, सूर्य और कल्पवृक्ष आदि की तरह प्रत्युपकार की अपेक्षा न करके कल्याण में लगे रहते हैं, मोक्षपुरी को प्राप्त कराने में समर्थ निर्मल मार्ग में स्थित होते हैं, दूसरे भी विनम्र शिष्यों को मोक्षमार्ग में लगाते हैं, विस्तृत और अतिधवल ज्ञान और महान् दर्शनरूपी उनके नेत्र होते हैं। वे कुलीन, विनीन, निर्भय, मानरहित, रागरहित, शल्यरहित, मोहरहित होते हैं। वचन और तप तथा तेज में अद्वितीय हैं, इस प्रकार कहना आचार्य का वर्णजनन है।

दशभक्ति संग्रह में आचार्य भक्ति करते हुए कहते हैं-

मुनिमाहात्म्यविशेषान्, जिनशासनसत्प्रदीपभासुरमूर्तीन्।। 1।।
सिद्धिं प्रपित्सुमनसो, बद्धरजोविपुलमूलघातनकुशलान्।। 2।।
गुणमणिविरचितवपुषः, षड्द्रव्यविनिश्चितस्य धातृन्सततम्।
रहितप्रमादचर्यान्, दर्शनशुद्धान् गणस्य संतुष्टिकरान्।। 3।।

जो मुनियों के विशेष माहात्म्य को, ज्ञान के अतिशय को प्रकाशित करने वाले हैं, जिनकी मूर्ति जिनशासन को प्रकाशित करने के लिए दीपक के समान देदीप्यमान है अथवा तपश्चरण के माहात्म्य से जिनके शरीर की मूर्ति दीपक के समान देदीप्यमान हो रही है, जिनके मन में सिद्ध पद प्राप्त करने की इच्छा है, जो ज्ञानावरण आदि कर्मों के बन्ध होने के तत्प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य आदि कारणों को नाश करने में अत्यन्त कुशल हैं, जिनके शरीर सम्यग्दर्शनादि गुणरूपी मणियों से सुशोभित हैं, जो जीवादिक छहों द्रव्यों के निश्चय को सदा आधारभूत रहते हैं- अर्थात् जिनके हृदय में छहों द्रव्यों का सदा गाढ़ श्रद्धान रहता है, जिनके चारित्र विकथा आदि प्रमादों से सदा रहित रहते हैं, जिनका सम्यग्दर्शन सदा शंकादिक 25 दोषों से रहित होता है और जो संघ को सदा संतुष्ट करने वाले हैं- ऐसे आचार्य को मैं नमस्कार करता हूँ।

ये चारयन्ते चरितं विचित्रं स्वयं चरन्तो जनमर्चनीयाः।
आचार्यवर्या विचरन्तु ते मे प्रमोदमाने हृदयारविन्दे॥

–(आचार्य अमितगति, श्रावकाचार, 1/3)

अर्थात् जो नाना प्रकार के चरित्र का स्वयं आचरण करते हुए जनता को भी आचरण कराते हैं, ऐसे पूजनीय आचार्यवर्य मेरे प्रमुदित हृदय-कमल में सदा विचरण करें।

आचारितुं योग्यः आचार्यः

जो पंचाचार का स्वयं पालन करते हैं एवं स्व-शिष्यों को इसका पालन करवाते हैं, वे आचार्य कहलाते हैं। णमोकार महामन्त्र में **णमो आइरियाणं** पद में ही ऐसे आचार्यों को नमस्कार किया गया है। धवलाकार आचार्य वीरसेन **णमो आइरियाणं** की व्याख्या इसप्रकार करते हैं–

पञ्चविधमाचारं चरति चारयतीत्याचार्यः चतुर्दशविद्यास्थानपारगः एकादशाङ्गधर-आचाराङ्गधरो वा तात्कालिकस्वसमयपरसमयपारगो वा मेरुरिव निश्चलः क्षितिरिव सहिष्णुः सागर इव बहिः क्षिप्तमलः सप्तभयविप्रमुक्तः आचार्यः।

–(षट्खंडागम, 1/1/1, पृष्ठ 49)

जो दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप और वीर्य इन पाँच आचारों का स्वयं आचरण करते हैं और दूसरे साधुओं से आचरण कराते हैं उसे आचार्य कहते हैं। जो चौदह विद्यास्थानों में पारंगत हैं, ग्यारह अंग के धारी हैं अथवा आचारांगमात्र के धारी हैं अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमय में पारंगत हैं, मेरु के समान निश्चल है, पृथिवी के समान सहनशील है, जिसने समुद्र के समान मल अर्थात् दोषों



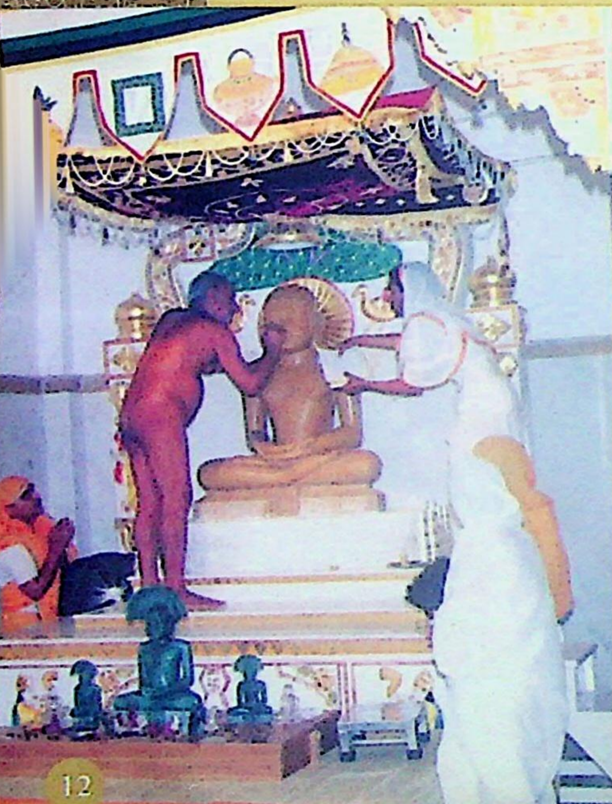
केशलुंचन करते हुए आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज एवं तपस्वी की तपस्या का दिग्दर्शन करते हुए वैद्यराज सुशील जी (जयपुर) व अन्य लोग

को बाहर फेंक दिया है और जो सात प्रकार के भय से रहित हैं, उसे आचार्य कहते हैं। और भी कहा है-

पवयणजलहिजलोयरण्हायामलबुद्धिसुद्धछावासो ।
मेरुव्व णिप्पकंपो सूरो पंचाणणो वज्जो॥29॥
देसकुल-जादिसुद्धो सोमंगो संग-भंग-उम्मुक्को।
गयणव्व णिरुवलेवो आइरियो एरिसो होदि॥30॥
संगहणुग्गहकुसलो सुत्तत्थविसारदो पहियकित्ती।
सारणवारणसोहण-किरियुज्जुत्तो हु आइरियो॥31॥

-(षट्खण्डागम, 1/1/1, पृष्ठ 50)

अर्थात् प्रवचनरूपी समुद्र के जल के मध्य में स्नान करने से अर्थात् परमागम के परिपूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गई है, जो निर्दोष रीति से छह आवश्यकों का पालन करते हैं, जो मेरु पर्वत के समान निष्कम्प हैं, जो शूरवीर हैं, जो सिंह के समान निर्भीक हैं, जो निर्दोष हैं, देश, कुल और जाति से शुद्ध हैं, सौम्यमूर्ति हैं, अंतरंग और बहिरंग परिग्रह से रहित हैं, आकाश के समान निर्लेप हैं, जो सूत्र अर्थात् परमागम के अर्थ में विशारद हैं, जिनकी कीर्ति सब जगह फैल रही है, जो सारण अर्थात् आचरण, वारण अर्थात् निषेध और शोधन अर्थात् व्रतों की शुद्धि करने वाली क्रियाओं में निरन्तर उद्युक्त हैं, उन्हें आचार्य परमेष्ठी समझना चाहिए।



भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमा को सूरिमंत्र देते हुए पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज



ज्ञानगुरु आचार्य समंतभद्र मुनिराज से धर्मचर्चा करते हुए पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज

'सिस्साणुग्गहकुसलो।

शिष्यस्य शासितुं योग्यस्यानुग्रह उपादानं तलस्मस्तस्य वा कुशलो दक्षः शिष्यानुग्रहकुशलो दीक्षा-दिभिरनु-ग्राहकः परस्यातमनश्च।'

-(मूलाचार, गाथा 156)

अर्थात् शासितुं योग्यः शिष्यः इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो अनुशासन के योग्य हैं, वे शिष्य कहलाते हैं। उनके अनुग्रह में अर्थात् उनको ग्रहण करने में जो कुशल होते हैं, दीक्षा आदि द्वारा पर के ऊपर और स्वयं पर अनुग्रह करने वाले हैं, वे आचार्य कहलाते हैं।

भव्या आत्महितार्थमाचरन्ति यस्मात् स आचार्यः। -(चारित्रसार, पृष्ठ 143)

जो भव्यात्मा आत्महित करने के लिए आचरण करते हैं, उन्हें आचार्य कहते हैं-

'आचर्यतेऽस्मादाचार्यः।' -(मूलाचार, टीका 155, पृष्ठ 132)

आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित मूलाचार में भी आचार्य परमेष्ठी के गुणों का व्याख्यान किया है-

गंभीर दुद्धरिसो सूरो धम्मप्पहावणासीलो।
खिदिससिसायरसरसो कमेण तं सो दु संपत्तो॥ 159॥

अर्थात् जो गंभीर हैं, दुर्धर्ष हैं, शूर हैं और धर्म की संभावना करने वाले हैं, भूमि, चन्द्र और समुद्र के गुणों के सदृश हैं, इन गुण विशिष्ट आचार्य को मुनि क्रम से प्राप्त करता है।



ज्ञानगुरु आचार्य समंतभद्र मुनिराज से 30 दिन के उपवास के उपरान्त विचार-विमर्श करते हुए पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज

आचार्यत्व योग्यता

विशुद्धवंशः परमाभिरूपो जितेन्द्रियो धर्मकथाप्रसक्तः।
सुखर्द्धिलाभेष्ववसक्तचित्तो बुधैः सदाचार्य इति प्रशस्तः॥

-(आचार्यभक्ति, क्षेपक, 8)

जो विशुद्ध वंश में उत्पन्न हुए हैं, सुन्दर, सुडौल रूप के धारक हैं, इन्द्रिय विजेता हैं, धर्मकथाओं के उपदेश में रत हैं, सुख, ऋद्धि आदि के लाभों में जिनके मन में आसक्ति/इच्छा उत्पन्न नहीं होती है, ऐसे यानि सच्चे आचार्य हैं।

संसार कटु वृक्षस्य, द्वे फले ह्यमृतोपमे।
सुभाषित रसास्वादः संगतिः सुजनैर्जनैः॥

वस्तुतः संसार महाकटु है। उसमें भी कलियुग-हुण्डावसर्पिणी-काल। वर्तमान युग की भयंकरता में मानव जीवन त्रस्त हो रहा है। मानवता काँप रही है। चारों ओर अत्याचार, अनाचार, अनीति और उत्पात छाये हुए हैं। इस विषम परिस्थिति में सुख और शान्ति के दो ही सरल उपाय हैं- 1. मधुर भाषण, 2. सत्पुरुषों का समागम। साधु-संतों का दर्शन मात्र ही पुण्य वर्द्धक, पाप-नाशक, कल्याणकारक और हितसाधक है। कहा भी है-

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं, सद्यः साधुसमागमः॥

साधुजन जीवन्त तीर्थ हैं। जड़भूत तीर्थ तो समय आने पर फल प्रदान करते हैं, किन्तु सत्साधुओं का समागम तत्क्षण ही उत्तम-शुभ फल प्रदान करता है। उसमें भी निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधुओं का संगम तो उभय लोक में सुख प्रदान करता है।

वर्तमान में साधु-संत एवं अनेक महान आचार्य है, जो भगवान आदिनाथ से महावीर तक के तीर्थंकरों के द्वारा रखी हुई नींव को महल का सुन्दर शिखर रूप दे रहे हैं। जैनधर्म को एक अच्छा नेतृत्व देने की भूमिका में जो प्राचीन आचार्यों का योगदान रहा, वह एक अद्वितीय

एवं चिरस्मरणीय है। वर्तमान में इसी निर्ग्रन्थ परम्परा में आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज हैं जो जगविख्यात हैं।

जैन संस्कृति ने आध्यात्मिक जागरण और सामाजिक क्रान्ति के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। प्रतिभा सम्पन्न मूर्धन्य मनीषियों, ऋषियों के चिंतन और मनन को अंतः सलिलाओं द्वारा भारतीय मानस को सदैव उर्वर और प्रकाशपूर्ण बनाकर चिरन्तन एवं सनातन सत्यों को उद्‌घाटित किया है। उसी संस्कृति के उद्‌गाता, सजग प्रहरी, अनन्त आस्था के आयाम, अन्तर के तेज से दीप्तिमान मुखमण्डल, उन्नत और प्रशस्त भाल, अन्तरभेदिनी दृष्टियुक्त उज्ज्वल नयन कमल, जन मंगल का उपदेश देती मुखरित प्रज्ञा, प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व से विभूषित परमपूज्य गुरुवर श्री विद्यानंदजी मुनिराज हैं। आप अपने मुनि दीक्षा के साधनामय 50 वर्ष पूर्ण कर रहे हैं। यह लम्बी अवधि शास्त्रानुशीलन, स्वाध्याय, लोक जागरण, धर्म प्रभावना, सेवा एवं ध्यान-योग की दृष्टि से अत्यंत गौरवपूर्ण रही है। यह साधना सम्पन्न साधकों का अभिनन्दन है। साधक साधना का सम्मान करता है और संसारी साधक का अभिनन्दन। साधना परम तत्व मोक्ष की उपासना है। परम साधना का उदात्त संकल्प, समुद्यम आप जैसे विरलतम व्यक्तित्व में ही पाया जा सकता है।

व्यापक, विराट ऊर्जस्वल, व्यक्तित्व के परिचय, प्रशस्ति को शब्द-श्रृंखला की कड़ियों में आबद्ध करना सूर्य को दीपक दिखाने के सदृश है। आपके गुणों का विश्लेषण करना वस्तुतः नन्हीं-नन्हीं भुजाओं से अपार समुद्र को पार करने जैसा असंभव कार्य है।

इस अवसर पर मैं कुछ ऐसी ही स्थिति अनुभव कर रहा हूँ, कि एक तुच्छ किरण अपने सूरज के सम्बन्ध में क्या प्रकाश डाले, एक बूंद अपने सागर के लिए क्या कहे? मूक मन आह्लादित कर देने वाली अनन्त सुरभि के लिए क्या बतलाए? फिर भी मैं अपनी समग्र शक्ति को सहेजते हुए कुछ साहस बटोरता हूँ, अपने आराध्य पर कुछ लिखने के लिए

उगता हुआ सूरज, बहता हुआ पानी, फैलती हुई चाँदनी, खिलता हुआ फूल परिचय के मोहताज नहीं होते हैं, उसी प्रकार परमपूज्य श्वेतपिच्छाचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज को किसी

आचार्यत्व योग्यता

विशुद्धवंशः परमाभिरूपो जितेन्द्रियो धर्मकथाप्रसक्तः।
सुखर्द्धिलाभेष्वविसक्तचित्तो बुधैः सदाचार्य इति प्रशस्तः॥

-(आचार्यभक्ति, क्षेपक, 8)

जो विशुद्ध वंश में उत्पन्न हुए हैं, सुन्दर, सुडौल रूप के धारक हैं, इन्द्रिय विजेता हैं, धर्मकथाओं के उपदेश में रत हैं, सुख, ऋद्धि आदि के लाभों में जिनके मन में आसक्ति/इच्छा उत्पन्न नहीं होती है, ऐसे यानि सच्चे आचार्य हैं।

संसार कटु वृक्षस्य, द्वे फले ह्यमृतोपमे।
सुभाषित रसास्वादः संगतिः सुजनैर्जनैः॥

वस्तुतः संसार महाकटु है। उसमें भी कलियुग-हुण्डावसर्पिणी-काल। वर्तमान युग की भयंकरता में मानव जीवन त्रस्त हो रहा है। मानवता काँप रही है। चारों ओर अत्याचार, अनाचार, अनीति और उत्पात छाये हुए हैं। इस विषम परिस्थिति में सुख और शान्ति के दो ही सरल उपाय हैं- 1. मधुर भाषण, 2. सत्पुरुषों का समागम। साधु-संतों का दर्शन मात्र ही पुण्य वर्द्धक, पाप-नाशक, कल्याणकारक और हितसाधक है। कहा भी है-

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं, सद्यः साधुसमागमः॥

साधुजन जीवन्त तीर्थ हैं। जड़भूत तीर्थ तो समय आने पर फल प्रदान करते हैं, किन्तु सत्साधुओं का समागम तत्क्षण ही उत्तम-शुभ फल प्रदान करता है। उसमें भी निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधुओं का संगम तो उभय लोक में सुख प्रदान करता है।

वर्तमान में साधु-संत एवं अनेक महान आचार्य है, जो भगवान आदिनाथ से महावीर तक के तीर्थंकरों के द्वारा रखी हुई नींव को महल का सुन्दर शिखर रूप दे रहे हैं। जैनधर्म को एक अच्छा नेतृत्व देने की भूमिका में जो प्राचीन आचार्यों का योगदान रहा, वह एक अद्वितीय

एवं चिरस्मरणीय है। वर्तमान में इसी निर्ग्रन्थ परम्परा में आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज हैं जो जगविख्यात हैं।

जैन संस्कृति ने आध्यात्मिक जागरण और सामाजिक क्रान्ति के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। प्रतिभा सम्पन्न मूर्धन्य मनीषियों, ऋषियों के चिंतन और मनन को अंतः सलिलाओं द्वारा भारतीय मानस को सदैव उर्वर और प्रकाशपूर्ण बनाकर चिरन्तन एवं सनातन सत्यों को उद्घाटित किया है। उसी संस्कृति के उद्गाता, सजग प्रहरी, अनन्त आस्था के आयाम, अन्तर के तेज से दीप्तिमान मुखमण्डल, उन्नत और प्रशस्त भाल, अन्तरभेदिनी दृष्टियुक्त उज्ज्वल नयन कमल, जन मंगल का उपदेश देती मुखरित प्रज्ञा, प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व से विभूषित परमपूज्य गुरुवर श्री विद्यानंदजी मुनिराज हैं। आप अपने मुनि दीक्षा के साधनामय 50 वर्ष पूर्ण कर रहे हैं। यह लम्बी अवधि शास्त्रानुशीलन, स्वाध्याय, लोक जागरण, धर्म प्रभावना, सेवा एवं ध्यान-योग की दृष्टि से अत्यंत गौरवपूर्ण रही है। यह साधना सम्पन्न साधकों का अभिनन्दन है। साधक साधना का सम्मान करता है और संसारी साधक का अभिनन्दन। साधना परम तत्व मोक्ष की उपासना है। परम साधना का उदात्त संकल्प, समुद्यम आप जैसे विरलतम व्यक्तित्व में ही पाया जा सकता है।

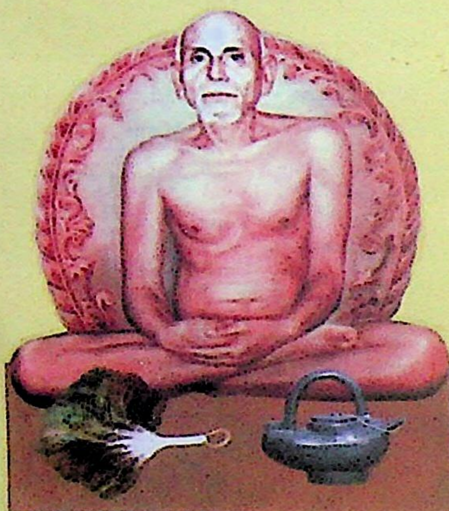
व्यापक, विराट ऊर्जस्वल, व्यक्तित्व के परिचय, प्रशस्ति को शब्द-श्रृंखला की कड़ियों में आबद्ध करना सूर्य को दीपक दिखाने के सदृश है। आपके गुणों का विश्लेषण करना वस्तुतः नन्हीं-नन्हीं भुजाओं से अपार समुद्र को पार करने जैसा असंभव कार्य है।

इस अवसर पर मैं कुछ ऐसी ही स्थिति अनुभव कर रहा हूँ, कि एक तुच्छ किरण अपने सूरज के सम्बन्ध में क्या प्रकाश डाले, एक बूंद अपने सागर के लिए क्या कहे? मूक मन आह्लादित कर देने वाली अनन्त सुरभि के लिए क्या बतलाए? फिर भी मैं अपनी समग्र शक्ति को सहेजते हुए कुछ साहस बटोरता हूँ, अपने आराध्य पर कुछ लिखने के लिए

उगता हुआ सूरज, बहता हुआ पानी, फैलती हुई चाँदनी, खिलता हुआ फूल परिचय के मोहताज नहीं होते हैं, उसी प्रकार परमपूज्य श्वेतपिच्छाचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज को किसी

परिचय की आवश्यकता नहीं है। उनका आदर्श जीवन ही एक पुराण है। ऐसे पुराणपुरुष के सान्निध्य में निरन्तर विगत् पाँच वर्षों से ज्ञानाराधना की अनुभूति निराली है। जिसका सहस्र जिह्वाओं से भी वर्णन नहीं किया जा सकता है। गुरुदेव का वात्सल्यमयी ज्ञानदान की शैली अन्यत्र कहीं भी दिखाई नहीं देती है। तरो व तारो की भावना प्रबल है जिनकी, ऐसे वे गुरु मेरे मन बसे। कहा भी है-

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भव जलधि जिहाज।
आप तिरे पर तार ही ऐसे सिरी ऋषिराज॥



पूज्य आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज

अर्थात् वे गुरु मेरे मन में विराजमान हो जायें जो संसार रूपी सागर में जहाज की तरह स्वयं पार हो जायें और अन्य संसारी प्राणियों को भी पार लगाने में समर्थ हैं। ऐसे श्री ऋषिराज आचार्यश्री महावीरकीर्ति मुनिराज पर यह उक्ति चरितार्थ होती है। आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज जीवन्त तीर्थ स्वरूप थे। सम्पूर्ण त्यागी वर्गों के लिए आपका जीवन आदर्श स्वरूप था। आप महान् तपस्वी एवं कठोर साधक थे। आपका उज्ज्वल जीवन ज्ञान, ध्यान में लवलीन साक्षात् मोक्षमार्ग को दिखाने वाला था। आपका जीवन अध्यात्म के श्रेष्ठ ग्रन्थ समयसार के सार को साकार करनेवाला था। आपकी तपोमय साधना भेद विज्ञान की पाठशाला थी। अध्ययन क्रम के बारे में बताते हुए आप कहते थे-

आचार्यः पादमाचष्टे, पादः शिष्यः स्वमेधया।
तद् विज्ञसेवया पादः, पादः कालेन पच्यते॥

आचार्य 25 प्रतिशत अपने शिष्यों को पढ़ाते हैं। 25 प्रतिशत शिष्य स्वयं अपनी बुद्धि से

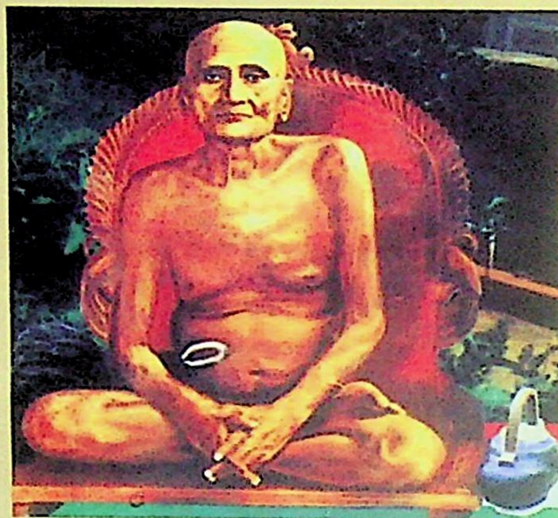
शिक्षा ग्रहण करते हैं। विद्वान् लोगों की सत्संगति से 25 प्रतिशत ज्ञान ग्रहण करते हैं और 25 प्रतिशत कालान्तर में अपने आप ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार क्रमिक अभ्यास से ज्ञानार्जन करना चाहिए। आचार्यश्री बहुभाषाविद् थे, सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करते हुए प्रान्तीय भाषाओं को सीखकर वहाँ के जनमानस को उनकी ही मातृभाषा में ज्ञानामृत का पान कराते थे। जैसे कर्नाटक आदि प्रदेशों में कन्नड़ आदि भाषाओं में आप धाराप्रवाह उपदेश देते थे। आप अनुशासन प्रिय होते हुए नम्र स्वभाव से युक्त दया की प्रतिमूर्ति थे।

आपके प्रिय शिष्य जिनका नाम था क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति जी, जो आज वर्तमान में पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज हैं। जब आचार्य महावीरकीर्ति जी ने सुरेन्द्र नाम के बालक को क्षुल्लक दीक्षा दी, तब उन्होंने उन्हें एक श्लोक प्रतिदिन याद करके सुनाने का नियम दिया और कहा तभी आहार को उठना। क्षुल्लक दीक्षा उपरांत उनका नाम पार्श्वकीर्ति वर्णी रखा गया। क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति वर्णी जी ने गुरु आज्ञा का पालन किया, जिसके फलस्वरूप आज उन्हें लगभग 8000 श्लोक, गाथायें आदि कण्ठस्थ हैं। आज भी पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज अपने क्षुल्लक दीक्षागुरु आचार्य महावीरकीर्ति जी के उपकार को स्मरण करते हैं। आचार्यश्री निरन्तर तपाराधना एवं ज्ञानाराधना से अपने तन व चेतन को सोने जैसे तपाते हैं।



क्षुल्लकरत्न श्री पार्श्वकीर्ति वर्णी जी

इस भारत वसुन्धारा में समय-समय पर जिन महापुरुषों ने जन्म लेकर स्व-पर उपकार द्वारा जीवन को अलंकृत कर धर्मप्राण देश को पावन किया है, उन्हीं महापुरुषों में से एक आचार्यश्री शान्तिसागर जी भी हैं। एक समय था कि देश में दिगम्बर जैन मुनियों के दर्शन भी दुर्लभ थे, किन्तु जब से चतुर्थकाल के मोक्षमार्ग के दृश्य को ज्वलंत रूप से प्रदर्शित करने वाले चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागर जी महाराज, संघ सहित दक्षिण भारत से विहार कर उत्तर भारत में पधारे, तब से समाज के भाग्य ने करवट बदली और यत्र-तत्र दिगम्बर महामुनिराजों एवं आचार्यों के दर्शन होने लगे। केवल दर्शन ही नहीं अपितु अनेक महान् आत्माओं ने पूज्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्य महाराज एवं उनके संघ के तपस्वी साधुओं की तपश्चर्या एवं देशना से प्रेरणा प्राप्त कर स्वयं मुनि, आचार्य, उपाध्याय आर्यिका एवं व्रती त्यागी बनकर अपने अमूल्य मानव-जीवन को कृतार्थ किया है।

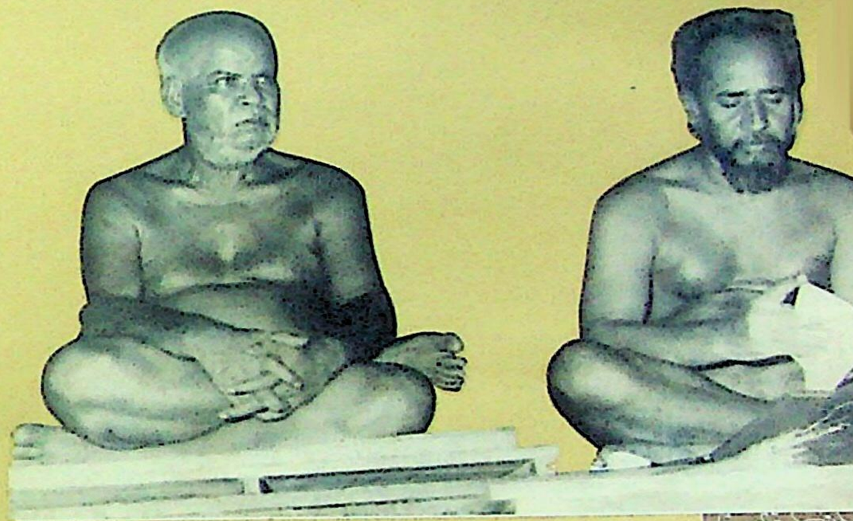

चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी मुनिराज

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने।।

अर्थात् जिस प्रकार प्रत्येक पहाड़ पर माणिक्य नहीं होता, प्रत्येक हाथी के मस्तक में गजमोती नहीं होते, प्रत्येक जंगल में चन्दन नहीं होता, उसी प्रकार सब जगह सच्चे साधुओं के दर्शन नहीं होते। पुनरपि हमारा सद्भाग्य है कि इस भौतिक युग में भी प्रशस्त वीतराग मार्ग को बतलाने वाले सच्चे मोक्ष-मार्गी तपस्वी, ज्ञानी और ध्यानी दिगम्बर मुनिराजों के दर्शन

सुलभता से हो रहे हैं। वैसे आगम की आज्ञा है कि इस पंचमकाल के तीन वर्ष साढ़े आठ मास अवशेष रहेंगे, तब तक दिगम्बर जैनमुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका का इस भारत देश में सद्‌भाव रहेगा और वे सम्यग्दृष्टि होंगे और अभी तो उस समय को साढ़े अठारह हजार वर्ष बाकी हैं। हाँ, तो उन्हीं चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज से प्रेरणा पाकर संसार-भोगों से विरक्त होकर स्व-पर कल्याण द्वारा मनुष्य जीवन को कृतार्थ करने वाले हैं हमारे आचार्य पायसागर जी महाराज। उनके शिष्य आचार्य जयकीर्ति जी, आचार्य जयकीर्ति जी के शिष्य आचार्यश्री देशभूषण जी मुनिराज एवं देशभूषण जी मुनिराज के सुयोग्य व सुशील शिष्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज है।

"आज हम उनके 'मुनि दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव' के अवसर पर उन उपकारी गुरु का गुणानुवाद कर रहे हैं जो कि जिनशासन शिरोमणि, ज्योतिपुंज, सद्‌गुणरत्न महोदधि, क्षमाधर, परोपकार परायण, विलक्षण वाग्मी, अक्षयकोष, धैर्यवान, गौरवशाली, विमल विचारक, सरस्वती कंठाभरण, दिव्य विभूति, जिनचरणानुगामी, वरिष्ठ विद्वान्, अध्यात्मोन्मुखी, मनस्वी, वाग्कुशल, उदारमन, कुशल शासक, गुणनिधि, हितचिंतक, लोकोद्धारक, अज्ञान तिमिर नाशक, जनकल्याणकारी, वैराग्य के मूर्ति रूप, सौम्य-स्वभावी आदि गुणों से विभूषित है। आपका गंभीर शास्त्र अध्ययन तर्कणाशक्ति, दूरदर्शिता, साथ ही निस्पृहता, लोकज्ञता और व्यवहार कुशलता का भी परिचय प्राप्त होता है। साथ ही अद्वितीय वात्सल्य, परोपकारिता और धर्मानुराग भी प्रकट हुए बिना नहीं रहता।



आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी मुनिराज एवं
पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज

'आगमचक्खू साहू' भगवान ने आगम ही साधु का नेत्र कहा है।'' आपके उद्गारों से हृदय की पवित्रता, निर्मल भावना, सरल व्यवहार, अगाधवात्सल्य अपरिमित विद्यानुराग और संयम एवं संयमी के प्रति सद्भावना स्पष्ट प्रकट होती है। वस्तुतः आपका हृदय माँ का और मस्तिष्क सच्चे पिता का है। ध्यान-अध्ययन आपके प्राण है।

तपस्वी, मनस्वी गुरु बड़े विरले ही हुआ करते हैं जो स्व-पर कल्याण में अपना जीवन व्यतीत करते हैं और ऐसा गुरु हर कोई नहीं बन सकता है। गुरु की परिभाषा बताते हुए आचार्य वादीभसिंह सूरि जी क्षत्रचूड़ामणि ग्रन्थ में कहते हैं कि-

रत्नत्रयविशुद्धः सन्, पात्रस्नेही परार्थकृत्।
परिपालितधर्मो हि, भवाब्धेस्तारको गुरुः॥

अर्थात् जो रत्नत्रय का धारक, सज्जन, पात्रप्रेमी, परोपकारी, धर्मरक्षक और जगतारक होता है, वही यथार्थ गुरु होता है, किन्तु जिसमें उक्त गुण नहीं होते, वह यर्थात् गुरु कहलाने का अधिकारी नहीं होता है।

ऐसे ही है पूज्य आचार्यश्री जी, जिनमें ये सभी गुण विद्यमान हैं। उन गुणों को देखकर हर कोई उनका शिष्य बनना चाहता है लेकिन जो गुरुभक्त, संसार से विरक्त, विनयी, धर्मात्मा, कुशाग्रबुद्धि, शान्तपरिणामी, आलस्यहीन और सभ्य होता है वही शिष्य वास्तविक शिष्य कहलाता है। यथा-

गुरुभक्तो भवातीतो, विनीतो धार्मिकः सुधीः।
शान्तस्वान्तो ह्यतन्द्रालुः, शिष्टः शिष्योऽमिष्यते॥

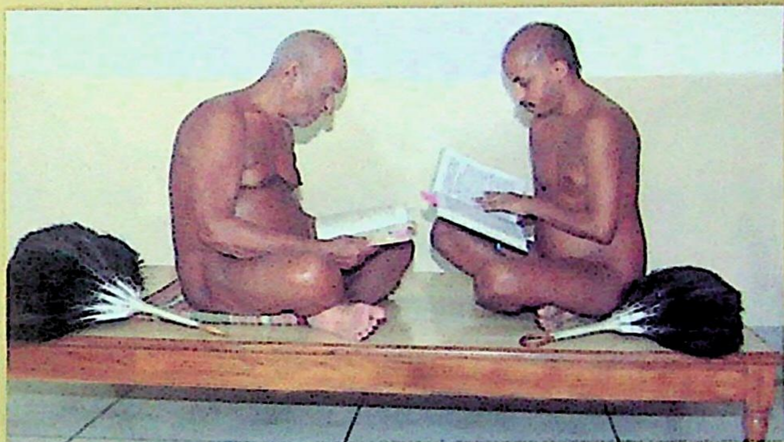
आचार्यश्री जीवन्त तीर्थ स्वरूप हैं। सम्पूर्ण त्यागी वर्गों के लिए आपका जीवन आदर्श स्वरूप है। पूज्य गुरुदेव के पास प्रतिक्षण आध्यात्मिक अमृत का रसास्वादन एवं उनके अनुभव मेरे जीवन को कृतार्थ करने के लिए पर्याप्त है। सभी द्वन्दों से मुक्त कुन्दकुन्द भारती में गुरुदेव के सन्निधि में ज्ञानामृत का पान करना सर्वार्थसिद्धि के देवों के अनुभव से भी महान है। कहा भी है-

"सर्वद्वन्दं परित्यज्य निवृत्तेनान्तरात्मना।
ज्ञानामृतं सदा पेयं चित्ताह्लादनमुत्तमम्॥" -(सारसमुच्चय, 12)

अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि को निश्चित होकर सर्व सांसारिक उपाधियों को त्यागकर चित्त को आनन्दकारक उत्तम आत्मध्यान से उत्पन्न ज्ञानामृत का पान करना चाहिये।

इसके लिए पूज्य गुरुदेव ही पर्याप्त है। आचार्यश्री 'चलते-फिरते विश्वविद्यालय' हैं ऐसा मैंने अब तक सुना था किन्तु अब अनुभव किया है। आचार्यश्री आध्यात्मिक, धार्मिक, सैद्धान्तिक, न्याय, व्याकरण आदि अनेक विषयों में परांगत तथा प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, हिन्दी, कन्नड़, मराठी आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता भी हैं। आचार्यश्री का चिंतन स्व-परकल्याण कारक है। आज वर्तमान में जो जैनधर्म एवं दिगम्बर जैन समाज का देश-विदेश में प्रचार-प्रसार हुआ या हो रहा है उस सबका श्रेय पूज्य गुरुदेव को ही जाता है।

आचार्यश्री के सान्निध्य में रहकर ज्ञानार्जन का अनुभव मुझे जो यहाँ मिला वो अविस्मरणीय है। मैंने अनेक संघों, मुनि-आचार्यों के पास एवं गुरुकुल में रहकर विद्याध्ययन किया किन्तु जो ज्ञान का लाभ आचार्यश्री की सन्निधि में विगत 5 वर्षों से अनवरत प्राप्त हो रहा है, उसे मैं पौद्‌गलिक शब्दों से वर्णन नहीं कर सकता हूँ क्योंकि अक्षर से अनुभव महान् होता है। कहा भी है-



पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज से अध्ययन करते हुये
उपाध्यायश्री प्रज्ञसागर जी मुनि

"अनुभव चिंतामणि रतन, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोख को, अनुभव मोखस्वरूप॥"

-(पं. बनारसीदास, समयसार नाटक)

आचार्यश्री अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी इस युग के महान् संत हैं। 88 वर्ष की उम्र में भी हजारों श्लोक, गाथाएँ, कारिकायें, सूत्रादि अभी भी कण्ठस्थ हैं। आचार्यश्री की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे ज्ञान संबंधी बातों को छोड़कर अन्य विषयों में कभी भी चर्चा नहीं करते हैं। प्रत्येक समय उनकी वाणी से जिनवाणी का रसास्वादन अनवरत होता है। वाणी में जिनवाणी, हृदय में जिनदेव के प्रति अगाध श्रद्धा, चरणकमलों में मोक्षमार्ग को प्राप्त करने का प्रबल पुरुषार्थ प्रत्येक समय झलकता है। ऐसे अनेक गुणों से समृद्ध व सम्पन्न पूज्यश्री के दर्शनों के लिए देश-विदेश के सभी दर्शनार्थी लालायित रहते हैं।



आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी मुनिराज

आचार्यश्री का सान्निध्य जिन भाग्यशाली लोगों को मिला है उनका कायाकल्प हो गया है। दर्शन मात्र से जो आचार्य व्यक्ति के अन्त:करण को निर्मल बनाने में सक्षम हो वह वस्तुत: आध्यात्मिक ऊर्जा का स्रोत ही हो सकता है। विश्व धर्म की उच्च चेतना से मानवीय मूल्यों तथा आध्यात्म दर्शन की सात्त्विकता से समस्त समाज को सुपथ पर अग्रसर करने का अद्‌भुत स्रोत पूज्य गुरुदेव में साधना और तपस्या से सहज रूप में संवलित है।

दिव्य आत्माओं के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को आबद्ध करने में शब्द भी अक्षम होते हैं। आचार्यरत्न परमपूज्य श्री देशभूषणजी महाराज के कर-कमलों द्वारा आचार्यश्री विद्यानन्दजी को लिखित एक पत्र का अंश उद्‌धृत कर रहा हूँ-

"अपने धर्म में विभिन्न सम्प्रदाय हैं, जहाँ जैसा स्थान हो वहीं की धार्मिक परम्पराओं, मान्यताओं और भावनाओं को ध्यान में रखकर कार्य करना। जहाँ जिस प्रकार की पूजा-अर्चना आराधना और अनुष्ठान होते हों उसी प्रकार से करवाना, ताकि समाज में द्वंद्व न हो। हमें समाज को सबल बनाना है और समाज ही हमारी शक्ति है।"

आचार्यश्री ने अपने प्रवचनों में अपने पूज्य गुरुदेव की अभिलाषा को मूर्त रूप दिया जिसका प्रभाव आज विश्व में स्पष्टतः परिलक्षित होता है। हमारे अनुभवों में ऐसे कोई कार्य नहीं दिखते जिसकी तुलना आध्यात्मिक गुरु की शक्ति से की जा सके, जो सद्गुरु का दृष्टान्त बन सके। उनकी कृपा प्रकाश की एक झलक व्यक्ति के जीवन की धारा को बदल सकने में सक्षम है। कुछ लोग कहते हैं कि संसार में अद्भुत पारसमणि है जो लोहे जैसी सामान्य धातु को शुद्ध सुवर्ण बना देती है। गुरु और पारसमणि के कार्यों में भगवद्पाद ने एक अन्तर देखा है। पारसमणि लोहे को सोना तो बना सकती है परन्तु उस सोने में पारसमणि की शक्ति नहीं आती। इसीलिए सद्गुरु की महिमा सर्वथा अनुपमेय है। गुरु अपने शिष्य को अपने सर्वगुण सम्पन्न ढाँचे में ढाल देता है। सिद्ध पुरुष आचार्य देशभूषण महाराज जी ने अपने सुयोग्य एवं प्रबुद्ध शिष्य आचार्य विद्यानन्दजी को ऐसी दीक्षा दी कि आज आचार्यश्री मानवता के कल्याण के लिए आशा के पुंज हो गये हैं।

मुनि-दीक्षा धारण करने के बाद से आचार्यश्री ने ज्ञानार्जन की यात्रा पर बहुत सधे पग बढ़ाये। जितना पढ़ा, उससे अधिक उस पर मनन किया। उस ज्ञान का भंडार जितना अधिक बढ़ता गया, उसे जनता तक ठीक-ठीक प्रभावकारी ढंग से पहुँचाने की साध भी उसी मात्रा में बढ़ती गयी। इसके लिए उन्होंने स्वयं को अपना ही शिष्य बनाया और एक छात्र की भाँति एक-एक कदम मंजिल तय की। भाषा, भाषण और शैली के कितने ही प्रयोग किये और एक दिन वह आ गया कि गुरुदेव की वाणी साकार सरस्वती बन गयी। तब से आज तक वह जो बोलते हैं, सीधा हृदय में उतरता है और उनकी शैली का निजी माधुर्य मोहित करता है। उनकी साधना और उनके ज्ञान की गहराई ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम पा लिया है- अर्थात् उन्हें जन-जन ने पा लिया है।

श्रमण-संस्कृति के शुभ्र दर्पण, दिगम्बर नरसिंह, वीतरागता, सात्त्विकता, सौम्यता, सहजता की प्रतिमा, स्नेह-विवेक से आप्यायित, परम ज्योतिर्मय तपःपूत शरीर, अधरों पर सहज मुस्कान, भव्य ललाट, नेत्रों में तैरती सम्यक्त्व-ज्योति, शैशव का अनुपम सारल्य, निर्द्वन्द्व मुख-मण्डल, निर्मलता के आगार, परमतत्त्वज्ञानी, प्रबुद्धचेता, परम संवेदनशील, देशानुराग से अनुरंजित, तप-ज्ञान-कला-साहित्य के पुंजीभूत, अनन्त प्रेरणाओं के अजस्र स्रोत, अहिंसा के आराधक, मानवता के प्रबल प्रेमी, जनमानस को समान्दोलित करने वाले कुशल जन-नेता, प्रजा-परम्परा और सामासिक संस्कृति के जीवन्त प्रतीक आचार्यश्री जी सम्प्रदाय-पुरुष न होकर एक राष्ट्र सन्त और विश्व-पुरुष हैं। स्वतन्त्रचेता आचार्यश्री जीवन के दृष्टा और सृष्टा दोनों हैं।

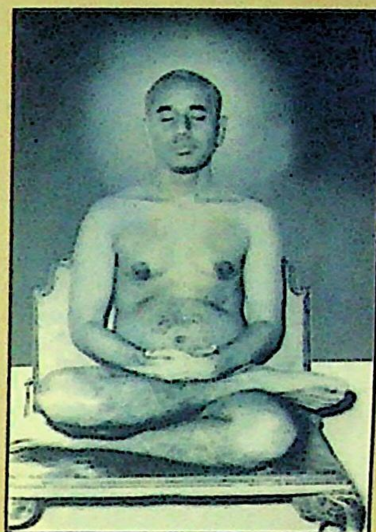


क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति वर्णी का दीक्षा गुरु द्वारा केशलोंच सन् 1963

विश्वधर्म के उद्‌बोधक श्रमण, संस्कृति के पुरस्कर्ता, सिद्धान्तचक्रवर्ती, प्रज्ञापुरुष आचार्यश्री का तपस्वी जीवन ही अध्यात्म का प्रकाश स्तम्भ है। आत्मोदय से लोकोदय यही उनका सही अर्थ में जीवन दर्शन है। युगपुरुष, अध्यात्म मार्तण्ड आचार्यश्री सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न है। वे गहन एवं सूक्ष्मज्ञानी तो हैं ही साथ ही शाश्वत गती-प्रगतिशील है। उनका सामाजिक दर्शन सार्वजनिक एवं बहुआयामी है। वे विश्वशांति के अग्रदूत है। अहिंसक समाज रचना के प्रबल पोषक हैं। राष्ट्र मंगल तथा विश्व का स्वस्तिवाचन उनका मूलमन्त्र ही है। वे अध्यात्म के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण के संप्रवर्तक हैं।

मनुष्य किसी जीवन-दृष्टि या दर्शन से महान नहीं बनता, महान वह उस समय बनता है जब वह उनका अनुवर्तन करता है, इनके अनुकूल आचरण करता है। आचार्यश्री के महान

व्यक्तित्व की यह विशेषता है कि अपनी जीवन-दृष्टि एवं दर्शन को वे आचरण के केनूवस पर उतार कर रख रहे हैं। जब से उन्होंने मुनि-पद की दीक्षा ली (25 जुलाई 1963) तब से वे निरन्तर तप और साधना में निरत हैं। 'धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन, साहित्य का अन्वेषण और ऐतिहासिक तथ्यों की खोज उनके जीवन के अंग बन गये हैं।' अपने व्यक्तित्व को पिघलाकर दूसरे के अन्दर उतारने वाले आचार्यश्री असंख्य लोगों के हृदय-दीपकों को भव्यालोक प्रदान कर रहे हैं। इनकी अमृत वाणी यदि संत्रस्त, संपीड़ित मानवता के रिसते जख्मों पर, चंदन सदृश शीतलता प्रदान करती है, तो उपदेश उद्बोधन और जागरण की प्रेरणा प्रदान करते हैं।



मुनि दीक्षा के उपरांत ध्यानस्थ पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनि

पूर्व उपार्जित कर्मों का फल

श्रावक और श्रमण दोनों का ही जीवन संघर्षमय है, दोनों के जीवन में ही अशुभ कर्मों का उदय आता रहता है। साता और असाता एक सिक्के के दो पहलू हैं, कभी साता तो कभी असाता का उदय चलता रहता है। जो इनमें संयम व समता बरतते हैं, वे महान पुरुष बन जाते हैं। आचार्यश्री के जीवन में भी ऐसे अनेक अशुभ कर्म के उदय आये जिन्हें सहज रूप से सहन किए। महत्त्वपूर्ण कुछ घटनाएँ सुधी पाठकों के लिए प्रस्तुत करना यहाँ मैं उचित समझता हूँ-

बालक सुरेन्द्र को बचपन से ही साधुओं के समागम, पिताजी द्वारा शास्त्र-स्वाध्याय का लाभादि मिलता रहा। जब सुरेन्द्र 17 वर्ष के हुए तब उन्हें आचार्य महावीरकीर्ति मुनिराज का प्रथम बार सान्निध्य मिला उनकी। धर्मचर्चा व मुनिचर्या को देखकर उन्हें संसार शरीर भोगों से विरक्ति हो गई तथा वहीं दृढ़ संकल्प कर लिया कि मैं भी महावीर स्वामी के मुक्ति



ब्र. सुरेन्द्र कुमार उपाध्ये

मार्ग का अनुगामी बनूँगा, लेकिन वहाँ सुरेन्द्र के अशुभ कर्म के उदय से शेडवाल (जन्म स्थान) गाँव के समस्त श्रेष्ठिगणों ने युवा सुरेन्द्र को संघ में प्रवेश करने का विरोध किया। विरोध होने से आचार्य महावीरकीर्ति जी ने उसे वात्सल्य भाव से समझाया और कहा कि अभी तुम छोटे हो 3 वर्ष और घर में रहकर धर्मध्यान व अध्ययन करो तथा अपने वैराग्य को और पुष्ट करो। गुरु आज्ञा का उल्लंघन न हो इस बात को ध्यान में रखकर मधुरभाषी युवारत्न सुरेन्द्र उस समय अपने माता-पिता के साथ घर वापिस आ गया और 3 वर्षों तक गुरु के द्वारा दिखाये गये मार्गदर्शन का पालन करता रहा।

जब सुरेन्द्र 20 वर्ष का हो गया तब शेडवाल के पास ही ऐनापुर गाँव में आचार्य महावीरकीर्ति जी का संघ आया हुआ था यह सुन कर सुरेन्द्र हर्षित हो उनके दर्शन के लिये वहाँ पहुँचे, पहुँचकर अपने माता-पिता की अनुमति के बिना ही आचार्यश्री से संघ में प्रवेश की अनुमति माँगी। आचार्यश्री ने सहज ही स्वीकृति प्रदान की और अनन्तचतुर्दशी के दिन सन् 1945 में 2 प्रतिमा के व्रत देकर व्रती श्रावक बनाया। लगभग 6-7 महीने में ही ब्र. सुरेन्द्र को संयम धारण करने के उत्कृष्ट भाव बने उन्होंने आचार्यश्री से दीक्षा के लिये विनम्र निवेदन किया किन्तु यहाँ भी अशुभ कर्म के उदय से गाँव के श्रेष्ठिजन आचार्यश्री के पास आकर कहने लगे कि गुरुवर इसे दीक्षा न दी जाये यह बड़ा राजनीतिक है। तदनन्तर आचार्यश्री ने उन सभी सज्जनों से कहा कि **आपका काम आहार देना है बुद्धि देना नहीं**, दीक्षा देना न देना हमारा काम है। क्या आपको पता नहीं कि हमारे सभी तीर्थंकर राजघरानों व क्षत्रियवंश के थे, ऐसा कहकर आचार्यश्री ने उन सबको निरूत्तर कर दिया। आखिरकार 15 अप्रैल 1946 में आचार्यश्री की महती कृपा हुई और ब्र. सुरेन्द्र को तमदड्डी ग्राम में क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति वर्णी के रूप में प्रतिष्ठित किया।

क्षुल्लक अवस्था में आचार्यश्री के साथ चातुर्मास कोन्नूर किया। वहाँ आचार्य भद्रबाहु गुफा में चार माह साधनारत रहे तत्पश्चात् चातुर्मास निष्ठापन करके गुरु से आज्ञा लेकर क्षु. पार्श्वकीर्ति तीर्थयात्रा करने के लिये निकले। सिद्धवन गुरुकुल धर्मस्थल में महान विद्वान तपस्वी, वयोवृद्ध श्री नेमिसागर वर्णी जी मिले, कुछ दिन वहीं रहकर उनसे कन्नड़ ग्रन्थों का

अध्ययन किया तथा कुछ अनुभव की बातें मुझे बतायें जो मेरे जीवन में काम आये ऐसा क्षुल्लक जी ने कहा। तब वर्णी जी ने कहा कि- **''दो रोटी हजम करते हो तो लोगों की दो बातें भी हजम करना।''** उनकी यह बात हृदयंगम कर वहाँ से कारकल जी की यात्रा के लिये निकल गये। वहाँ पर प्रो. जीव ब्रह्मप्पा, मैसूर निवासी मिले और उन्होंने क्षुल्लक जी से प्रवचन करने के लिये प्रार्थना की। क्षुल्लक जी ने कहा कि मुझे प्रवचन करना नहीं आता, तो उन्होंने उल्लाहना देते हुए कहा कि रोटी खाने के लिये क्यों साधु बन गये? उस समय उन्हें श्री नेमिसागर वर्णी जी की वह बात याद आ गई कि ''दो रोटी हजम करते हो तो लोगों की दो बातें भी हजम करना'' यहाँ भी पूज्यश्री अपने अशुभ कर्म का उदय समझकर मौन रहे।

कुछ वर्ष पश्चात् क्षुल्लकश्री राजस्थान में कुचामन सिटी आचार्य महावीरकीर्ति जी के दर्शनार्थ संघ में पहुँचे। वहाँ गुरुवर से कुशल क्षेम पूछकर तत्त्व-चर्चा की और साथ में ही रहे। संघ के साथ विहार करते हुये नागौर पहुँचे वहाँ पर दुर्लभ प्राचीन पाण्डुलिपि आदि का संग्रहालय है। कुछ लोगों को उनका लम्बा कपड़ा पहनना आदि पसन्द नहीं था लेकिन मैं आपको क्या बताऊँ कि पूज्यश्री क्षुल्लकावस्था में भी अत्यन्त अध्ययन प्रिय थे। उन्हें अध्ययन हेतु प्रसिद्ध पुस्तकालयों व संग्रहालयों में जाना पड़ता था। इस कारण उन्हें लम्बा वस्त्र धारण करना पड़ता था। नापसंद द्वारा की गई आलोचना को सहन करते हुए उन्हें श्री नेमिसागर वर्णी जी की कही हुई बात याद आ गयी और यह विचार किया कि यह मेरे अशुभ कर्म का उदय है जिस कारण मेरे साथ ऐसा हो रहा है।



समयसार की वाचना के उपरांत बेलगाम समाज द्वारा क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति वर्णी की पालकी यात्रा

अनेक स्थलों के शिलालेखों एवं पाण्डुलिपियों का अध्ययन करते हुये क्षुल्लकजी भारत की राजधानी दिल्ली आये, यहाँ अशोक शिलालेख का अध्ययन किया और नेशनल म्युजियम भी गये। दिल्ली में ही आचार्यरत्न देशभूषण जी मुनिराज विराजमान थे, जिनके दर्शनार्थ एवं अनेक जिज्ञासाओं को लेकर उनके समक्ष गये। उनके ज्ञान व आगमोक्त चर्या से क्षुल्लकजी अत्यन्त प्रभावित हुये और आचार्यश्री भी क्षुल्लक जी के समग्र ज्ञान से प्रसन्न हुये। एक दिन आचार्यश्री, क्षुल्लकजी से बोले कि तुम इतने बड़े विद्वान् तथा 17 वर्ष से क्षुल्लक हो मुनि दीक्षा धारण क्यों नहीं करते हो? मेरी बात मानों, अभी जो मुहूर्त आ रहा है वह बहुत अच्छा है आगे अनेक सालों तक ऐसा मुहूर्त नहीं आयेगा। इस मुहूर्त में ली गई दीक्षा से तुम विश्व में नाम कमाओगे और जैनधर्म की महती प्रभावना करोगे। आचार्यश्री की इस बात को क्षुल्लकजी ने सहज ही स्वीकार कर लिया और दीक्षा का प्रचार-प्रसार चहुं ओर हो गया किन्तु यहाँ भी क्षुल्लकजी के अशुभ कर्म का उदय आया। दिल्ली के कुछ प्रतिष्ठित गणमान्य लोग आचार्यरत्न देशभूषण जी मुनिराज के पास जाकर कहने लगे कि ये काल मुनि दीक्षा का नहीं है अब काल बदल गया है। आप मुनि दीक्षा नहीं दें तब आचार्यश्री ने उन श्रेष्ठिगणों से कहा कि जो दीक्षा लेने को तैयार है आप लोग उसी से बात करें। तब वे सभी क्षुल्लकजी को समझाने के लिए गए किन्तु उन्होंने कहा- **या तो काल बदल दूँगा या कालानुसार चलूँगा पर दीक्षा लेकर रहूँगा।**


मुनि दीक्षा से पहले क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति वर्णी का केशलोंच करते हुए आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी मुनिराज

25 जुलाई, 1963 को दिल्ली के परेड ग्राऊण्ड में हजारों श्रद्धालुओं के समक्ष क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति वर्णी की मुनि दीक्षा सम्पन्न हुई। मुनि दीक्षा के कुछ दिन उपरान्त महासभा के महामंत्री परसादी लाल पाटनी ने मुनिश्री से प्रवचन करने के लिये निवेदन किया तब उस समय में वे घनघोर अध्ययन रत होकर पिच्छि कमण्डलु नामक पुस्तक का लेखन कार्य कर रहे थे, जिस कारण उन्होंने प्रवचन करने के लिये मना कर दिया, इस बात को लेकर महामंत्री महोदय जी ने उनसे कहा कि हमारे दिगम्बर साधु गूंगे और रोटी खाने के लिये होते है। यह सुनकर एक बार फिर मुनिश्री को नेमिसागर वर्णी जी की कही हुई बात याद आ गयी और अपने अशुभ कर्म का उदय मानकर मौन हो गये। ऐसी एक नहीं अनेक घटनाएँ आचार्यश्री के जीवन में आती रहीं फिर भी पूज्यश्री आत्म व धर्मप्रभावना के सजग प्रहरी बन सूर्यकिरणसम समस्त पृथ्वी मण्डल को प्रकाशित कर रहे हैं।

बाल्यावस्था से लेकर अब तक के जीवन की प्रमुख घटनाओं की समीक्षा जब हम करते हैं तब लगता है जैसे वे केवल जैनों के ही नहीं देश की शताब्दियों में विकसित आध्यात्मिक मान्यताओं के जीवन्त इतिहास हैं। आचार्यश्री का अब तक का जीवन मात्र व्यक्तिगत उठान पर केन्द्रित नहीं है अपितु एक समस्त आध्यात्मिक साधना के साथ ही अनासक्ति और अपरिग्रह की उत्तम प्रयोगशाला भी सिद्ध हुआ है। निर्ग्रन्थ होकर ग्रन्थों का जो अभीक्ष्ण पारायण उन्होंने किया है और

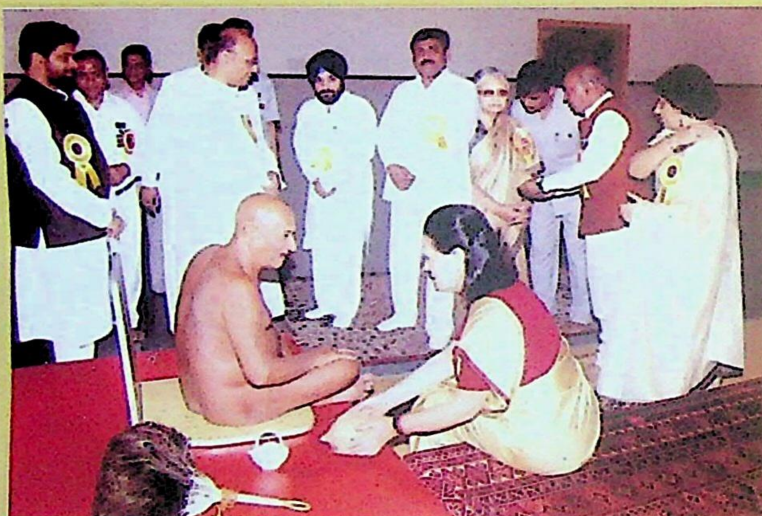


भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज से आशीर्वाद के रूप में मंगल कलश लेते हुए

परम्परा की जो युक्तियुक्त व्याख्याएँ की हैं, उनसे अंधविश्वासों की नींव हिली है और आदमी को प्रखर मनोबल प्राप्त हुआ है। भारतीयता की जो नई दिशा आचार्यश्री के उदार चिंतन से प्राप्त हुई है, उसे राष्ट्र का इतिहास कभी भूल नहीं पायेगा।

गुणानुवाद

आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज सार्थक नाम वाले मुनि हैं। विद्या में ही जिसे आनन्द आए वे हैं विद्यानन्द। आचार्यश्री में ज्ञान, आनन्द, अनुशासन, वैयावृत्य आदि अनेक गुण हैं। जो भी उनके सान्निध्य में आयेगा वह निश्चितरूपेण उन गुणों को पायेगा।



पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज को श्रीफल समर्पित करती हुईं कांग्रेस अध्यक्षा श्रीमती सोनिया गांधी एवं अन्य मंत्रीगण

आचार्यश्री का ज्ञान अत्यंत प्रामाणिक है। मूल ग्रन्थ, मूल टीका या श्लोक में जो होगा, उसी को नोट्स करते हैं, अन्य दर्शन शास्त्र भी पढ़ते हैं; परन्तु किसी भी प्रकार की काल्पनिक बातों को वे स्वीकार नहीं करते। आचार्यश्री का ज्ञान प्रामाणिक होने से आज चाहे कोई भी दर्शन वाले हों, चाहे कोई भी मत वाले हों, चाहे कोई भी सम्प्रदाय वाले हों, राजनीतिज्ञ हों, समाजसेवक हों, धर्मज्ञ हों, तत्त्वज्ञ हों, सभी लोग आचार्य श्री के सामने नतमस्तक होते हैं, उनके दर्शन पाकर पावन होते हैं, गर्व का अनुभव करते हैं।

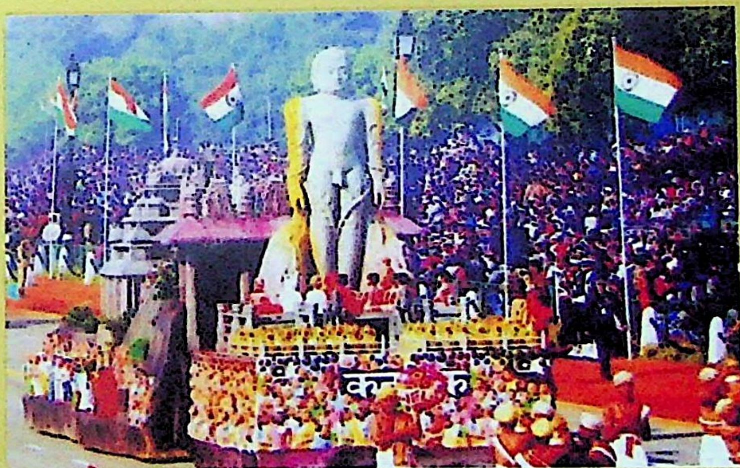
आज सब जगह प्राकृत भाषा का प्रचार-प्रसार होने का महान् श्रेय आचार्यश्री को ही जाता है। विद्वानों, पण्डितजनों के सम्मान करने की महान परम्परा का प्रारंभ भी आपने किया है। आचार्यश्री को समयसार की यह 206वीं गाथा बहुत ही प्रिय है-

"एदम्हि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हि।
एदेण होदि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं॥"

ज्ञानमात्र आत्मा में लीन होना, इसी से संतुष्ट रहना और इसी से तृप्त होना यह परम ध्यान है। इसी से वर्तमान में आत्मा को सच्चे आनंद की प्राप्ति है और उसके बाद सम्पूर्ण ज्ञानानंदस्वरूप केवलज्ञान की भी प्राप्ति होती है।

स्वयं कार्यरत रहते हैं, दूसरों को भी कार्यरत रखते हैं। उनको यही लगता है कि हमारे सब साधु वर्ग अध्ययन करें और अध्ययन कराते रहें। हर साधु के मन में यह भावना आनी चाहिए कि हमें पठन-पाठन ही करना है, नये-नये शोध करने हैं। जो साधु यह कार्य करते रहें तो उन साधुओं से आचार्यश्री अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं। 'आगमचक्खु साहू' आगम ही साधु की आँख है।

आचार्यश्री को अनुशासन बहुत ही प्रिय है। समय की पाबन्दी जो आचार्यश्री में है, वह कहीं भी नहीं मिलती है। हर कार्यक्रम सुन्दर उत्कृष्ट और अनुशासनबद्ध कराते हैं। उनको अनुशासनप्रिय लोग ही अच्छे लगते हैं। सन् 1981 के महामस्तकाभिषेक में प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा



पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज के मंगल आशीर्वाद से
26 जनवरी, 2005 की परेण्ड में भगवान गोम्मटेश बाहुबली की झांकी
(इस झांकी को प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया गया)



बार एसोसिएशन, इन्दौर में न्यायाधीशों और वकीलों को सम्बोधित करते हुए परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज

गाँधी आई थीं, उस समय दस लाख से भी अधिक लोग श्रवणबेळगोल पहुँच थे परन्तु आचार्यश्री का अनुशासन सबको शान्त, गम्भीर, कोलाहल रहित बनाए हुए था।

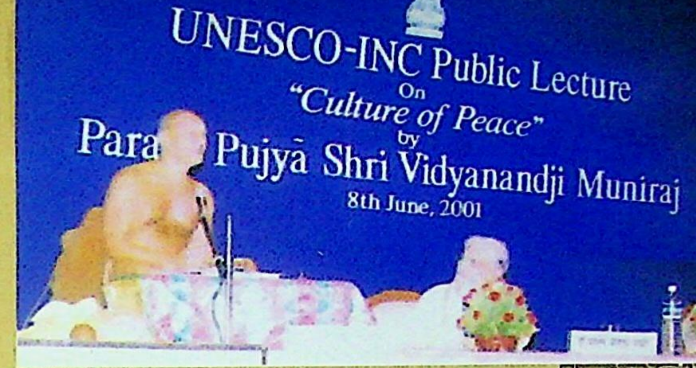
आचार्यश्री ने स्वयं चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागरजी मुनिराज के सान्निध्य में 12 वर्ष रहकर अनेक गुणों को देखा, सुना और ग्रहण किया है। आचार्य महावीरकीर्ति मुनिराज जी का सान्निध्य पाया, उनसे क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। आचार्य देशभूषण जी मुनिराज ने तो मुनि दीक्षा, उपाध्याय, आचार्य पदवियों को दिया। आचार्य पायसागर महाराज जी, आचार्य धर्मसागर जी आदि अनेक अनुभवी अनुशासन प्रिय मुनिराजों का सान्निध्य प्राप्त किया है। इतना ही नहीं अनेक दिग्गज प्रसिद्ध शास्त्री, पण्डित लोग आचार्य श्री के पास आते रहे हैं।

धर्म धर्मात्माओं में ही रहता है। गुण गुणी व्यक्तियों में ही निवास करते हैं। यही कारण है कि ज्ञानाराधना के अगाध अनुरागी आचार्यश्री के हृदय में ज्ञानी विद्वानों के प्रति भी अद्भुत वात्सल्य बना रहता है। वर्तमान में प्रचलित अनेक पुरस्कार आदि अनेक कार्यों से तो यह बात अत्यन्त स्पष्ट है ही किन्तु पण्डित माणिकचन्द जी कौन्देय न्यायाचार्य के निम्नलिखित कथन से यह भी सुसिद्ध होता है कि आचार्यश्री में यह विद्वद्वात्सल्य का भाव बहुत प्रारम्भ से ही रहा है और उन्होंने विद्वानों के प्रति उचित आदर-सम्मान का भाव समाज में जागृत करने के लिए शुरू से ही महान प्रयत्न किये हैं। आचार्यश्री के अनुसार विद्वानों के बिना समाज जीवित नहीं रह सकता है।

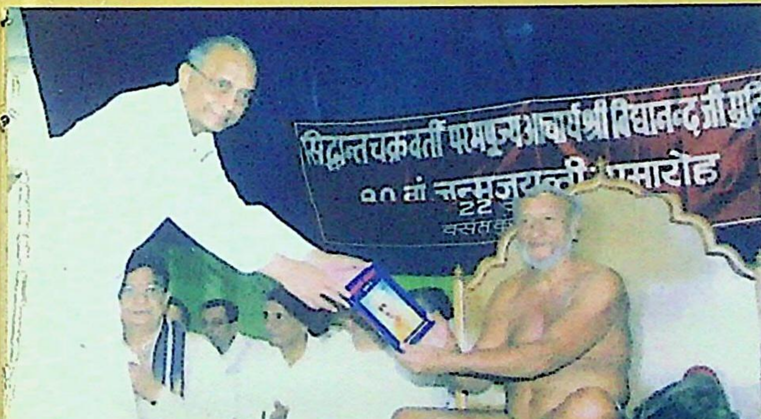


पूज्य आचार्यश्री के मंगल उद्बोधन के अवसर पर विशाल जन समुदाय

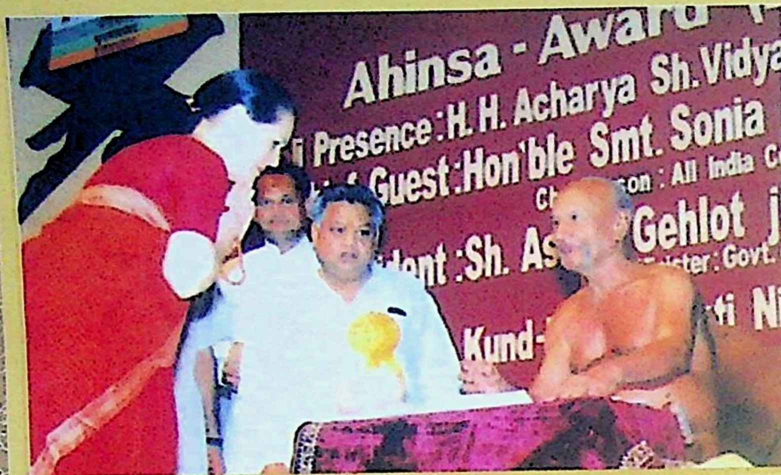
यूनेस्को द्वारा आमंत्रित सभा को संबोधित करते हुए
पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज



आचार्यश्री के मुखारविन्द से विश्वधर्म की जयघोष श्रवण कर और उनके लोकहितकारी अध्यात्मपूरित सार्वजनिक प्रवचन में सहस्रों की संख्या में उपस्थित विविध समाज की जनता को देखकर अनेक बन्धु यह प्रश्न करते हैं कि यह नवीन विश्वधर्म और उसका नारा मुनिश्री का चलाया हुआ है और मुनिश्री सर्वधर्मों (सम्प्रदायों) के मानने वाले हैं इस नाम से लोकानुरंजन का उनका क्या प्रयोजन है? हमारे समक्ष भी एक बार ऐसी उत्कण्ठा और चर्चा प्रस्तुत की गयी है। मानव-हृदय को संस्कृत कर उसमें विद्यमान विकारों को दूर करने का प्रयत्न ही धर्म का उद्देश्य है। जीवनमात्र सुख और शान्ति से रहे; **'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत'** की भावना विकसित हो। अहिंसा और समन्वय की भावना से यह भूतल स्वर्गोपम दृष्टिगोचर हो। प्राणिमात्र संघर्ष से बचे, मत्स्यन्याय (सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट) का आश्रय न ले, इस आदर्श को प्रस्थापित करने और **'ऋषि बनो या कृषि करो'**, **'जीओ और जीने दो'** का संजीवन मंत्र प्रदान करने हेतु समय-समय पर युगपुरुषों का प्रादुर्भाव होता रहा है। जैनदर्शन केवल शारीरिक अहिंसा तक ही सीमित नहीं है, वहाँ बौद्धिक अहिंसा भी अनिवार्य है। इस बौद्धिक अहिंसा को अनेकान्त, स्याद्वाद, समन्वय, सहअस्तित्व, सहिष्णुता, सर्वोदय, विश्वधर्म और जैनधर्म आदि नामों से संबोधित किया जाता है। आचार्यश्री उक्त नामों में से 'अहिंसा धर्म की जय' और 'विश्वधर्म की जय' नामों को चुन लिया है और वे अपने प्रवचनों में जैनधर्म के सर्वोदयी भव्य प्रासाद के **'आचार में अहिंसा, विचार में अनेकान्तवाद, वाणी में स्याद्वाद और समाज में अपरिग्रह'** इन चार महान स्तम्भों की महत्ता का विवेचन करते हैं। यह प्रसाद कोई नया नहीं है युग-युग में तीर्थंकरों ने भी इसका जीर्णोद्धार किया है और इसे युगानुरूपता दी है।



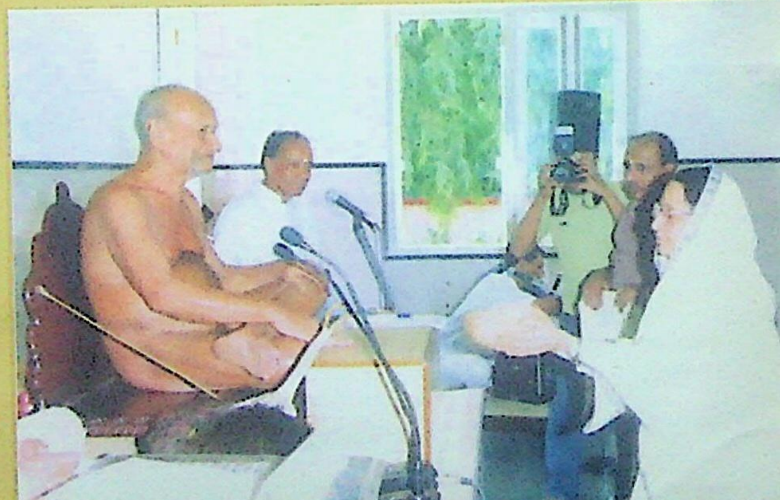
पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज को शास्त्र भेंट करते हुए 'समाज रत्न' साहू रमेश चन्द्र जैन



ब्राह्मी पुरस्कार के अवसर पर सोनिया गांधी पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज से विचार-विमर्श करते हुए। साथ में है सर्वश्री अशोक गहलोत एवं दिल्ली जैन समाज के प्रधान श्री चक्रेश जैन

नयी पीढ़ी का आह्वान करते हुए आचार्यश्री ने इस बात पर बल दिया कि धर्म को पुस्तकों से नहीं; आचार, न्याय और नीति से जानना चाहिये। ठीक भी है, भला जब तक धर्म ग्रन्थों में बन्द रहेगा-उन्हीं तक सीमित रहेगा तब तक लोक-जीवन से स्वतः दूर हट जाएगा। धर्म का रूप तो सर्वजगत्-हितकर्ता और लोकोपकारक होता है। धर्मतत्त्व-गवेषकों ने क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप आदि को सहज धर्म बताया है, यही तो मानव-जाति का धर्म है-विश्वधर्म है। 'वस्तु- स्वभावो धर्मः' अर्थात् प्रत्येक वस्तु की निजता ही उसका धर्म है; जैसे-जल का शीतलत्व, अग्नि का दाहकत्व, सागर का गंभीरत्व, आकाश का व्यापकत्व, पृथ्वी का सहिष्णुत्व। इसी प्रकार अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह आदि का अनुपालन करना हमारा कर्तव्य है, यही हमारा धर्म है।

आचार्यश्री कहते हैं कि हम अपने नेत्रों में मैत्री-भाव का अंजन लगायें, तभी वैर को मिटाया जा सकता है।



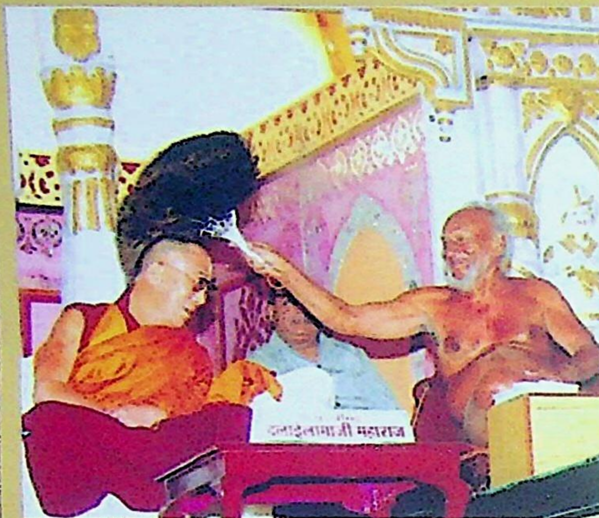
आचार्य अमृतचन्द्र पुरस्कार के अवसर पर तत्कालीन राज्यपाल (राजस्थान) माननीया श्रीमती प्रतिभा देवी सिंह पाटील परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज को श्रीफल समर्पित करती हुई

'न हि वैरेण वैरः शाम्यति' –वैर से वैर नहीं मिटता; मैत्री–भाव से ही संसार में युद्धोन्माद के काले बादल छँट सकते हैं। विश्वधर्म के लक्षणों का आरम्भ 'क्षमा' से होता है। हमें चाहिये कि उन्नत मनोबल, सामाजिक शिष्टता के आभूषण 'क्षमा' को विचार नहीं, आचार बनायें।

युग की पुकार हमें आचार्यश्री से जानना है। एक–दूसरे के प्रति आदर रखना और अनेकता के गर्भ में विद्यमान एकता की ओर दृष्टि करने में ही हमारा हित और बुद्धिमत्ता है। दिगम्बर जैन समाज में जो थोड़ी–बहुत एकता दिखाई दे रहीं है; वह सब भी आचार्यश्री के प्रयासों का ही परिणाम है। आपका नारा है कि **मत ठुकराओ, गले लगाओ, धर्म सिखाओ।** उक्त नारे की भावना को आपने न केवल अपने में आत्मसात किया है; अपितु वह आपके रोम–रोम में समाया है। जब–जब समाज में विघटन के प्रसंग आये, तब–तब आपने उसे रोकने का सफल प्रयास किया। विघटन को रोकने का आपका तरीका भी बड़ा अद्‌भुत है। बहिष्कार करनेवालों से कुछ न कहकर, जिसका बहिष्कार किया जा रहा है; उसे छाती से लगा लेना ही उसके बहिष्कार को निष्प्रभावी करने का एकमात्र उपाय है; क्योंकि उसमें सामनेवाले से उलझना भी नहीं पड़ता और काम भी हो जाता है। वर्तमान में समाज के मार्गदर्शन के लिए आचार्यश्री विद्यानन्द जी विराजमान हैं। उनके मार्गदर्शन में हम सभी भगवान महावीर के अनुयायी संगठित रहकर अपनी–अपनी धर्माराधना करें, भगवान महावीर की वाणी का प्रचार–प्रसार करें और आचार्यश्री की छत्रछाया हम सभी को चिरकाल तक प्राप्त रहे।



अहिंसा समवसरण के शुभ अवसर पर पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज एवं आचार्यश्री महाप्रज्ञ जी एवं आचार्य महाश्रमण जी



बौद्ध धर्म गुरु दलाई लामा को आशीर्वाद देते हुए पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज

आचार्यश्री के सम्बन्ध में सबके विचार और दृष्टिकोण भिन्न हो सकते हैं किन्तु उनका व्यक्तित्व असाधारण है, वे बिरले व्यक्तियों में एक अकेले हैं, इसे स्वीकार करना ही पड़ता है; इसलिए व्यक्ति के सामान्य व्यक्तित्व से लेकर लोक-धर्म और विश्वधर्म की समस्त परिभाषाएँ उनके व्यक्तित्व में सार्थक हैं। वे स्वयं विश्वधर्म के प्रतीक हैं। योग का अर्थ जोड़ है परन्तु आज का आदमी टूटता जा रहा है। समाज बिखर रहा है। सारी मान्यताएँ झूठी पड़ती जा रही हैं। विज्ञान की चकाचौंध में अब धार्मिक मान्यताओं में रोशनी नजर नहीं आ रही है। उन सबको रोशनी देने वाला क्रान्ति का कोई अमर हस्ताक्षर आज हमारे बीच यदि कोई है तो हमें गर्वपूर्वक कहना पड़ता है कि वह तेजस्वी आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज ही हैं।

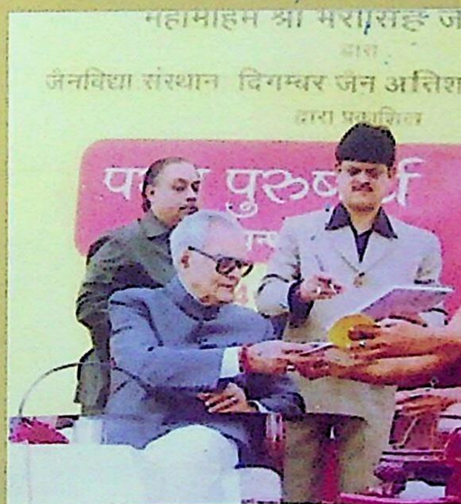
जीवन की अनन्त क्षणिकाएँ अनन्त रेखाओं में न जाने किन इन्द्रधनुषी रंगों में चित्र-विचित्र होती रहती हैं। उनमें केवल चित्र


पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज से धर्म चर्चा करते हुए पद्मश्री वीरेन्द्र हेगडे जी एवं डी.आर. शाह एवं अन्य महानुभाव



न्यायाधीश पी.एन. भगवती, कुलाधिपति श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज को श्रीफल समर्पित करते हुए

तब वे अन्तर्गूढ़ ही रह जाते हैं; रहस्य का प्रकाशन नहीं हो पाता। कल्पना तो है, पर उसे साकार करने वाले यदि उचित शब्द न हों तो वह साहित्य नहीं बन पाती, किसी अन्तरंग की चंचल तरंग बन कर रह जाती है। हमारे जीवन में आचार्यश्री ऐसे ही शब्द बन कर आये,



अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी में भगवान
पुस्तिका पर तत्कालीन राज्यपाल भैरोसिं
पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द

जिनके प्रत्येक अक्षर ने हमारे भावों को ही मानो खोल कर रख दिया। वस्तुत: व्यक्तित्व का अभिनिवेश शब्दों में अंकित नहीं किया जा सकता। वह न तो वेश में है, न सरल स्मित मुस्कराहट में और न ही चमकते हुए मुखमण्डल तथा विशाल भाल में है, वरन् उन सब के भीतर जो उनकी अनासक्त अन्तर्दृष्टि और अध्ययन-मनन की सतत कामना एवं साधना है, वही उनका व्यक्तित्व है। संयम-स्वाध्याय की साधना में वे हिमालय के समान अडिग और सुस्थिर हैं। गंगा के समान पवित्र उनका मन सतत ज्ञानोपयोग में रमा रहता है।



श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली में मंगल उद्‌बोधन देते हुए पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज

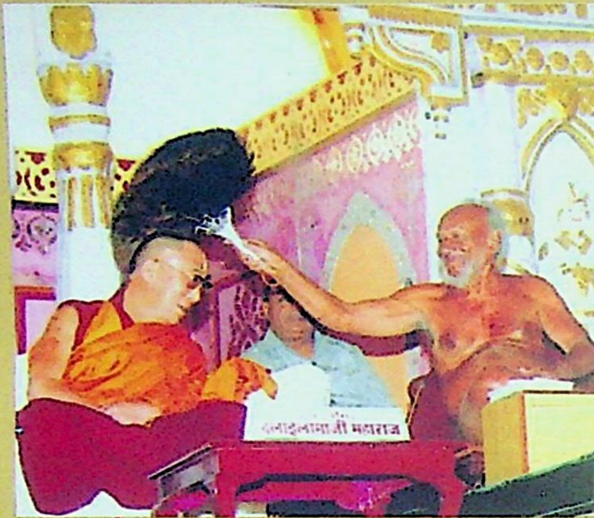
आचार्यश्री किसी को इसलिए अच्छे लगते हैं कि वे इस युग के हैं और इसलिए युग की भाषा में बोलते हैं, किसी दूसरे को वे इसलिए भले हैं कि वे बोलते ही नहीं हैं, स्वयं धर्म की भाषा हैं। दुनियाँ में शास्त्रों की कमी नहीं है, पर कोरा ज्ञान या शास्त्र को लिये फिरने से वह कभी-कभी शस्त्र भी बन जाता है। इसलिए हमें केवल शास्त्र नहीं, तत्त्वज्ञ नहीं उनका भावार्थ जानने वाला चाहिये, जो कि आचार्यश्री के विराट् व्यक्तित्व में समाया हुआ है।

प्राचीन समय में जैनाचार्य एवं मुनियों ने प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य को समृद्ध करने और जैनविद्या की समुन्नति में अनुपम योगदान किया है। जैन धर्म अत्यन्त प्राचीन और स्वतन्त्र धर्म

है, इसकी महती प्रभावना यदि किसी ने की है तो आचार्यश्री जी ने। राष्ट्र की प्राचीन जनभाषा शौरसेनी प्राकृत का प्रचार-प्रसार भी उन्हीं की दिव्य प्रेरणा से हो रहा है तथा विद्वानों के सम्मान की जो दृष्टि उन्होंने समाज को दी है, उसी से विद्वान् आज महिमामंडित होकर समाज के आदरणीय ही नहीं बने हैं अपितु उनकी स्थिति में भी गुणात्मक परिवर्तन आये हैं। दिगम्बर परम्परा में आचार्यश्री तप:पूत दिगम्बर योगी हैं वे प्राकृत भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित हैं। वे अध्यात्मशास्त्र के मर्मज्ञ तो हैं ही, भूगोल, इतिहास, संगीत, चित्रकला आदि लोक-शास्त्र के विविध विषयों के भी विशेषज्ञ हैं। जब आचार्यश्री क्षुल्लक थे और पार्श्वकीर्ति उनका सुभग नाम था, तब आपने 'सम्राट् सिकन्दर और कल्याण मुनि' नामक जो ऐतिहासिक पुस्तक लिखी थी और जिसका सब ओर से स्वागत हुआ था, उससे स्पष्ट है कि आचार्यश्री भूगोल और इतिहास में रुचि ही नहीं रखते वे उनके वेत्ता भी हैं। उनके विश्वधर्म की रूपरेखा, श्रमण संस्कृति, समयसार, पिच्छी कमण्डलु, धर्म-निरपेक्ष नहीं, सम्प्रदाय निरपेक्ष, प्रवचनमाला के दर्जनों प्रकाशित खण्ड, मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की संस्कृति, सम्राट-खारवेल, प्रियदर्शी सम्राट अशोक, शर्ववर्म और उनका कातन्त्र-व्याकरण : ऐतिहासिक परिशीलन, भट्टारक-भट्टारिकाओं की ऐतिहासिक परम्परा, महादेवी पद्मावती, सूतक-पातक, मुनिभक्त क्षेत्रपाल, जिनदर्शन-जिनपूजा आदि जैसी रचनाएँ मील का पत्थर हैं। सन् 1995 से ज्येष्ठ शुक्लपंचमी को प्राकृत-भाषा दिवस के रूप



कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली



बौद्ध धर्म गुरु दलाई लामा को आशीर्वाद देते हुए पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज

आचार्यश्री के सम्बन्ध में सबके विचार और दृष्टिकोण भिन्न हो सकते हैं किन्तु उनका व्यक्तित्व असाधारण है, वे बिरले व्यक्तियों में एक अकेले हैं, इसे स्वीकार करना ही पड़ता है; इसलिए व्यक्ति के सामान्य व्यक्तित्व से लेकर लोक-धर्म और विश्वधर्म की समस्त परिभाषाएँ उनके व्यक्तित्व में सार्थक हैं। वे स्वयं विश्वधर्म के प्रतीक हैं। योग का अर्थ जोड़ है परन्तु आज का आदमी टूटता जा रहा है। समाज बिखर रहा है। सारी मान्यताएँ झूठी पड़ती जा रही हैं। विज्ञान की चकाचौंध में अब धार्मिक मान्यताओं में रोशनी नजर नहीं आ रही है। उन सबको रोशनी देने वाला क्रान्ति का कोई अमर हस्ताक्षर आज हमारे बीच यदि कोई है तो हमें गर्वपूर्वक कहना पड़ता है कि वह तेजस्वी आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज ही हैं।



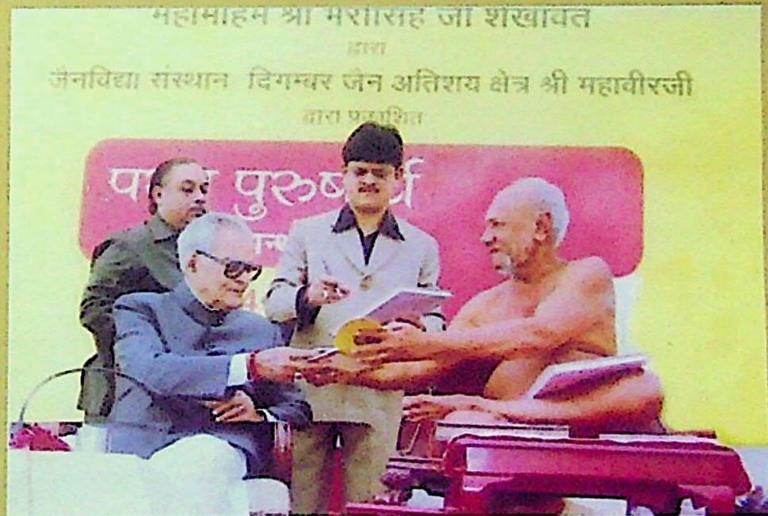
पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज से धर्म चर्चा करते हुए पद्मश्री वीरेन्द्र हेगडे जी एवं डी.आर. शाह एवं अन्य महानुभाव

जीवन की अनन्त क्षणिकाएँ अनन्त रेखाओं में न जाने किन इन्द्रधनुषी रंगों में चित्र-विचित्र होती रहती हैं। उनमें केवल चित्र



न्यायाधीश पी.एन. भगवती, कुलाधिपति श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज को श्रीफल समर्पित करते हुए

ही नहीं होते हैं, अर्थ और भाव भी होते हैं। जैसे कल्पना को साकार करने के लिए शब्द रेखाओं का आकार प्रदान करते हैं, वैसे ही हमारे अव्यक्त जीवन को भी कोई-न-कोई रेखा तथा आकार देने में निमित्त या सहायक होता है। कई बार हमारे भाव तो होते हैं, पर उन्हें प्रकट करने में जब हमें कोई निमित्त नहीं मिलता, तब वे अन्तर्गूढ़ ही रह जाते हैं; रहस्य का प्रकाशन नहीं हो पाता। कल्पना तो है, पर उसे साकार करने वाले यदि उचित शब्द न हों तो वह साहित्य नहीं बन पाती, किसी अन्तरंग की चंचल तरंग बन कर रह जाती है। हमारे जीवन में आचार्यश्री ऐसे ही शब्द बन कर आये,



अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी में भगवान महावीर स्वामी पर प्रकाशित पुस्तिका पर तत्कालीन राज्यपाल भैरोसिंह शेखावत से चर्चा करते हुए पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज

जिनके प्रत्येक अक्षर ने हमारे भावों को ही मानो खोल कर रख दिया। वस्तुतः व्यक्तित्व का अभिनिवेश शब्दों में अंकित नहीं किया जा सकता। वह न तो वेश में है, न सरल स्मित मुस्कराहट में और न ही चमकते हुए मुखमण्डल तथा विशाल भाल में है, वरन् उन सब के भीतर जो उनकी अनासक्त अन्तर्दृष्टि और अध्ययन-मनन की सतत कामना एवं साधना है, वही उनका व्यक्तित्व है। संयम-स्वाध्याय की साधना में वे हिमालय के समान अडिग और सुस्थिर हैं। गंगा के समान पवित्र उनका मन सतत ज्ञानोपयोग में रमा रहता है।



श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली में मंगल उद्‌बोधन देते हुए पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज

आचार्यश्री किसी को इसलिए अच्छे लगते हैं कि वे इस युग के हैं और इसलिए युग की भाषा में बोलते हैं, किसी दूसरे को वे इसलिए भले हैं कि वे बोलते ही नहीं हैं, स्वयं धर्म की भाषा हैं। दुनियाँ में शास्त्रों की कमी नहीं है, पर कोरा ज्ञान या शास्त्र को लिये फिरने से वह कभी-कभी शस्त्र भी बन जाता है। इसलिए हमें केवल शास्त्र नहीं, तत्त्वज्ञ नहीं उनका भावार्थ जानने वाला चाहिये, जो कि आचार्यश्री के विराट् व्यक्तित्व में समाया हुआ है।

प्राचीन समय में जैनाचार्य एवं मुनियों ने प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य को समृद्ध करने और जैनविद्या की समुन्नति में अनुपम योगदान किया है। जैन धर्म अत्यन्त प्राचीन और स्वतन्त्र धर्म

है, इसकी महती प्रभावना यदि किसी ने की है तो आचार्यश्री जी ने। राष्ट्र की प्राचीन जनभाषा शौरसेनी प्राकृत का प्रचार-प्रसार भी उन्हीं की दिव्य प्रेरणा से हो रहा है तथा विद्वानों के सम्मान की जो दृष्टि उन्होंने समाज को दी है, उसी से विद्वान् आज महिमामंडित होकर समाज के आदरणीय ही नहीं बने हैं अपितु उनकी स्थिति में भी गुणात्मक परिवर्तन आये हैं। दिगम्बर परम्परा में आचार्यश्री तप:पूत दिगम्बर योगी हैं वे प्राकृत भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित हैं। वे अध्यात्मशास्त्र के मर्मज्ञ तो हैं ही, भूगोल, इतिहास, संगीत, चित्रकला आदि लोक-शास्त्र के विविध विषयों के भी विशेषज्ञ हैं। जब आचार्यश्री क्षुल्लक थे और पार्श्वकीर्ति उनका सुभग नाम था, तब आपने 'सम्राट् सिकन्दर और कल्याण मुनि' नामक जो ऐतिहासिक पुस्तक लिखी थी और जिसका सब ओर से स्वागत हुआ था, उससे स्पष्ट है कि आचार्यश्री भूगोल और इतिहास में रुचि ही नहीं रखते वे उनके वेत्ता भी हैं। उनके विश्वधर्म की रूपरेखा, श्रमण संस्कृति, समयसार, पिच्छी कमण्डलु, धर्म-निरपेक्ष नहीं, सम्प्रदाय निरपेक्ष, प्रवचनमाला के दर्जनों प्रकाशित खण्ड, मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की संस्कृति, सम्राट-खारवेल, प्रियदर्शी सम्राट अशोक, शर्ववर्म और उनका कातन्त्र-व्याकरण : ऐतिहासिक परिशीलन, भट्टारक-भट्टारिकाओं की ऐतिहासिक परम्परा, महादेवी पद्मावती, सूतक-पातक, मुनिभक्त क्षेत्रपाल, जिनदर्शन-जिनपूजा आदि जैसी रचनाएँ मील का पत्थर हैं। सन् 1995 से ज्येष्ठ शुक्लपंचमी को प्राकृत-भाषा दिवस के रूप



कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली

में प्रत्येक वर्ष मनाये जाने की योजना उन्हीं की प्रेरणा का सुफल है। प्राकृत पाठ्यक्रमों में स्वीकृत ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना, गरिष्ठ एवं वरिष्ठ शोधार्थी विद्वानों को एक-एक लाख के पुरस्कारों के लिए स्वायत्त सेवी संस्थाओं एवं सामाजिक नेताओं के लिए प्रेरणा, शौरसेनी प्राकृत साहित्य संसद की स्थापना तथा उसके माध्यम से दिल्ली में प्राकृत अकादमी की स्थापना और प्राकृत भाषा को संवैधानिक भाषा के रूप में भारत सरकार द्वारा मान्यता प्रदान कराने हेतु मार्गदर्शन आदि आचार्यश्री का ही ऐतिहासिक योगदान है, जो प्राकृत भाषा एवं साहित्य के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। आचार्य श्री की पावन प्रेरणा से सन् 1974 में स्थापित, श्री कुन्दकुन्द भारती जैन शोध संस्थान नई दिल्ली ने प्राकृत भाषा एवं जैन साहित्य के प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार में पिछले लगभग तीन दशकों में अभूतपूर्व कार्य किया है। उसने सन् 1995 से श्रुतपंचमी पर्व को प्राकृत भाषा दिवस के रूप में मनाये जाने का भारतव्यापी निर्णय किया तथा उसके उत्साहवर्द्धक परिणाम भी सम्मुख आये हैं। शौरसेनी प्राकृत संगोष्ठी एवं प्राकृत कवि सम्मेलन के आयोजन किये जाते हैं जिनमें भारत के कोने-कोने से प्राकृत के विद्वान उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। वे प्राकृत वाङ्मय के विकास के पुरोधा है।

इस प्रकार आचार्यश्री ने प्राकृत भाषा साहित्य एवं संस्कृति के उन्नयन के लिए अनेक द्वार खोले हैं। समाज और विद्वानों के बीच वे सेतु बने हैं ताकि प्राकृत के अथाह समुन्दर से संस्कृति के रत्नों को उजागर किया जा सके। आचार्यश्री के प्रेरणा से श्री कुन्दकुन्द भारती में सम्राट् खारवेल भवन भी निर्मित हुआ है, जिसमें अब प्राकृत और भारतीय साहित्य का ग्रन्थागार संचालित हो रहा है। यहीं पर प्राकृत भाषा के शिक्षण और शोधकार्य को गति मिलने वाली है। यह संस्थान यदि पूज्य आचार्यश्री की प्रेरणा से प्राकृत वाङ्मय के विकास कार्यों में अग्रणी हो सका तो राजधानी में देश-विदेश के सैलानियों के लिए यह एक दर्शनीय तीर्थ बनकर रहेगा।



प्रो. नतालिया झेलेझनोवा (रूस) का सम्मान करती हुईं अखिल भारतीय कांग्रेस अध्यक्षा श्रीमती सोनिया गांधी

यह देश यदि सुरक्षित है तो आचार्यश्री जैसे महान सन्तों की कृपा एवं सन्देश ही इसमें मूल कारण है उन्होंने जीवन के नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठा तो की है, विद्या और विद्वान् के सम्मान के बारे में जो उदात्त दृष्टि उनकी है वहाँ तक लोगों की कल्पना भी नहीं पहुँची है। आचार्यश्री ने अपने एक लेख 'समाज विद्वानों को सम्मान दे' में अपने विचार निम्नप्रकार व्यक्त किए हैं :-

'विद्वानेव विजानाति, विद्वज्जनपरिश्रमम्।
नहि वन्ध्या विजानाति, गुर्वीप्रसववेदनाम्।।

-विद्वान ही विद्वान का परिश्रम जानता है। बन्ध्या स्त्री प्रसव के समय होने वाली बहुत बड़ी वेदना को नहीं जानती।

भारतीय सांस्कृतिक धरोहर प्राचीन साहित्य एवं शिलालेखों आदि में संरक्षित है। इसका बहुभाग प्राकृतभाषा में है। उसमें भी शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग अधिक है। इसलिए भारतीय भाषाओं एवं साहित्य में निहित सांस्कृतिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं ज्ञान-विज्ञान के तत्त्वों को ठीक ढंग से समझने-समझाने के लिए शौरसेनी प्राकृतभाषा एवं इसके विशेषज्ञ विद्वानों का संरक्षण आवश्यक है। हमें जीवित रहना है, तो अपनी संस्कृति व साहित्य को अक्षुण्ण रखना होगा। इसके लिए विद्वानों का सम्मान करना होगा। विद्वान् दीपक की भाँति होते है, जो अन्धकार में हमें रास्ता दिखाते हैं। आचार्यश्री ने सभी को सुई धागे की तरह जोड़ने का कार्य करने की प्रेरणा दी।

आचार्यश्री कहते हैं- जैन विद्वान् जैन संस्कृति के वाहक, उन्नायक और प्रचारक हैं। वे सदा से जैन संस्कृति के प्रचार-प्रसार में लगे हैं। समाज ने उनको जो कुछ दिया, उसका उन्होंने सहस्र गुण प्रत्यर्पण कर दिया। वे आज जो कुछ हैं, अपने स्वकीय अध्यवसाय से हैं। वे संस्कृति की जो सेवा कर रहे हैं, वह स्वेच्छा से, वे दिन-रात जैन साहित्य का सृजन कर रहे हैं, वह **स्वान्तःसुखाय।** 11वीं-12वीं शताब्दी में पं. आशाधार जी महान विद्वान थे। पं. टोडरमलजी आचार्यकल्प, गुरु गोपालदासजी बरैया, गणेश प्रसादजी वर्णी, ब्र. शीतल प्रसाद

जी, पं. भूधरदासजी आदि अनेक विद्वानों ने जैनदर्शन के हित को साधा है। अगर समाज में विद्वानों की कमी हो जाएगी तो धर्म का ज्ञान जन-साधारण तक कैसे पहुँचेगा? प्रत्येक समाज अपने विद्वानों को प्रश्रय देता है। हमें यदि अपनी संस्कृति और धर्म को बचाना हैं तो विद्वानों की न केवल कमी दूर करनी होगी, उन्हें पर्याप्त संरक्षण भी देना होगा। समाज की यह जिम्मेदारी है कि वह विद्वानों की रक्षा करे।



पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज की
88वीं जन्म-जयन्ती एवं गुणुनवाद समारोह

समाज को विद्वानों का उपकार अनुग्रहपूर्वक स्वीकार करना चाहिए। समाज के ऊपर विद्वानों का जो ऋण है, वह कृतज्ञ समाज को चुकाना है। आज तक समाज के रथ को दो ही वर्ग खींचते आए हैं - मुनि और विद्वान्। भारतीय संस्कृति में नीति रही है कि **'स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते'** अर्थात् राजा का आदर तो मात्र अपने देश में होता है किन्तु विद्वान् सारे भूमण्डल में पूजा जाता है। भारतीय संस्कृति में गुणवान् और विद्वानों को सम्मानित करने की गौरवशाली परम्परा रही है जो राजा विक्रमादित्य, राजा भोज के समय से चली आ रही है। राजाश्रम में विद्वान्, कलाकार व गुणीजन सम्मानित होते थे और साहित्य रचना के लिए पूरी सुविधाएँ पाते थे। प्राचीन

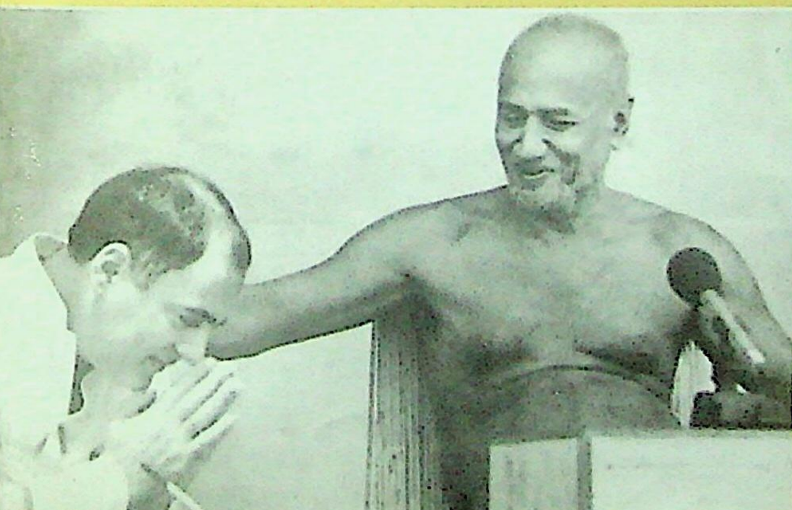


पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज से धर्म-चर्चा करती हुईं तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी

परम्पराओं और रूढ़ियों का आज भी अनुपालन होना चाहिए। जैनधर्म, संस्कृति, आगमों की रक्षा एवं प्रचार-प्रसार में हमारे मनीषी विद्वानों का अथक परिश्रम एवं पुरुषार्थ दीप ज्योति की भाँति सदैव हमारा मार्ग प्रकाशित करता रहेगा।

आचार्यश्री जैसे पूज्य एवं उच्च पद पर रहते हुए भी आपकी गुण-ग्राहिता सदा अग्रसर रहती है। विद्वानों के प्रति आपके हृदय में अगाध मान है। उनकी स्थिति और स्तर को उन्नत करने के लिए उनके चित्त में जो चिन्ता और लगन है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

ज्ञान के आनन्द में सदैव निमग्न, ज्ञानवानों के प्रति सहृदय एवं उनका सदैव सम्मान करवाने वाले आचार्यश्री का जीवन, उनके द्वारा प्रस्तुत धर्म की व्याख्या और जनता से उनका तादात्म्य तीनों इतने एकाकार हैं कि ज्ञाता और ज्ञेय में मन-वचन तथा काय किसी द्वार से किञ्चिन्मात्र भी अन्तर प्रतिभासित नहीं होता। जहाँ आचार्यश्री का साकार जीवित शरीर समस्त जीवों से स्वाभाविक जन्म-जात समता रखता है, वहाँ उनके द्वारा प्रस्तुत धर्म की परिभाषा भी सर्वजीव समभाव से ओत-प्रोत रहती है। और उनकी वाणी भी सदा विश्वैकरूप-विश्वधर्म का प्रतिपादन करती है। फलत: उनके सम्पर्क में समागत लाखों-लाखों जन उन्हें भेद-भाव-शून्य त्रियोग से निरखते, सुनते और समझते हैं। आचार्यश्री ज्ञान-स्व की साधना और सरस्वती जिनवाणी की आराधना में युगपत् तत्पर हैं-उन्होंने दोनों को एकाकार कर लिया है। वे वीर-वाणी को देश में उसी प्रकार बिखेर रहे हैं जिस प्रकार एक



पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज से आशीर्वाद ग्रहण करते हुए श्री राजीव गांधी

चतुर बागवान तैयार की हुई भूमि में बीज बिखेर देता है और अल्पकाल बाद संसार को लहलहाते पुष्पों वाले सुरभित पौधे तैयार मिलते हैं, वे उनकी सुरभि से मुदित होते हैं।

हमें गौरव है कि हमारे गुरुदेव का उत्साह आत्मानुरूप व आगमानुसार रहा। वे राजनीतिज्ञ तो हैं, राजनैतिक नहीं। राजनीति और राजनैतिकों के मंच से पूज्यश्री कोसों दूर रहते हैं। आचार्यश्री किसी का लिहाज किए बिना ही, न्याय-नीति और धर्मसम्मत बात कह देते हैं। ऐसा सर्वसाधारण के लिए करना बड़ा कठिन है, उसे आगा-पीछा सोचना पड़ सकता है। पूज्य गुरुवर हर क्षेत्र में अनमोल हैं। वे सर्वसुगुण सम्पन्न हैं। उन्हें ज्ञान है, विशेषज्ञान-विज्ञान है और भेद-विज्ञान भी है। मेरा तो कभी-कभी ऐसा भी विश्वास हो जाता है कि आज 2500 वर्षों के बाद जो स्थिति 'जनता की दृष्टि में' तीर्थंकर महावीर की है, वही स्थिति आज से 2500 वर्षों बाद आचार्यश्री की भी हो सकती है। तीर्थंकर को ज्ञान-विज्ञान के साथ भेद-ज्ञान की चरमोपलब्धि प्राप्त थी और पूज्यश्री भी भेद-विज्ञान की आत्म-परक चरमोपलब्धि करते ही उस स्थिति को पाने में समर्थ हो सकते हैं- जन-जन से दूर, शान्त एकान्त में विराजते हैं, वैसी सामर्थ्य रखते हैं।



लक्ष्य की ओर बढ़ते कदम

धर्मनिष्ठ गुरुदेव में धार्मिक सहिष्णुता का प्राचुर्य है। धर्म को वे अत्यन्त विशाल, व्यापक और विशद मानते हैं; संकीर्ण नहीं। उन्हीं के शब्दों में- 'जो अशान्ति से रहना सिखाये, आपस में लड़ाये, एक-दूसरे के विरुद्ध शस्त्र उठाये, वह धर्म कभी नहीं हो सकता। धर्म तो शान्ति, दया व प्रेम से रहना सिखाता है। अकेला धर्म ही मनुष्य को आपदाओं से मुक्ति दिला सकता है।' धार्मिक दृष्टि से उनके विचारों में औदार्य अत्यधिक है। उन्होंने जैनेतर धर्मों

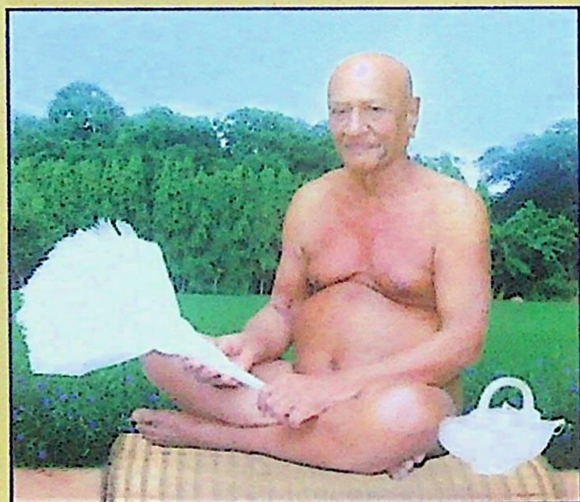
एवं मतों का भी अध्ययन, मनन, अन्वीक्षण किया है; लेकिन कहीं पक्षाग्रह या दुराग्रह देखने को नहीं मिलता। आज जिस 'वर्ल्ड ब्रदरहुड' और 'इन्टरनेशनल रिलीजन' की बात कही जाती है उसका अनुसरण गुरुदेव की वाणी में श्रवणगोचर हो रहा है, उसका क्रियान्वित रूप आचार्यश्री के आचरण में परिलक्षित होता है।

आचार्यश्री पर्वों के मनाने के पक्ष में तो हैं- चाहे वे राष्ट्रीय पर्व हों या सांस्कृतिक पर्व हों, लेकिन वे चाहते हैं कि इन पर्वों से सम्यक्त्व की उपलब्धि हो-इनसे ऐसा ज्ञानप्रदीप प्रज्वलित हो जो सभी के हृदय में घिरे अंधकार को नष्ट कर सके- **'ज्ञानेन पुंसः सकलार्थसिद्धिः'** ज्ञान से सब इच्छाओं की पूर्ति हो सकेगी। दीपावली के विषय में वे कहते हैं कि तीर्थंकर को दीप अर्पित करना भावनाओं के उज्ज्वल प्रतीकों का समर्पण करना है। दीपावली को मात्र दीपों की अवली तक सीमित मत रखो, आत्मा की गहराई में उतार कर देखो। संसार में सारे पाप अंधेरे में ही होते हैं, इसीलिए अंधेरे को दूर करो, संसार को प्रकाशपुंज से भरो, पाप-मुक्त करो। आज हमारी आजादी भी लाल किले पर तिरंगा फहराने या राष्ट्रपति की सवारी निकालने तक परिसीमित है। यहीं तक आजादी नहीं, देशोन्नति में जुटने और देश को खुशहाल बनाने में ही आजादी है।

पूज्यश्री प्रकृति के अनन्य उपासक हैं। प्रकृति के नाना मोहक रूपों में वे भावात्मक एकता के दर्शन करते हैं। 'हमारे देशवासी विदेशों की सैर करने को तो बड़ा महत्त्व देते हैं परन्तु अपने देश के गौरव हिमालय के प्राकृतिक सौंदर्य की ओर ध्यान नहीं देते। उन्हें वहाँ जाना चाहिये और वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य का लाभ उठाना चाहिये। हिमालय वह स्थान है जहाँ देश की भावात्मक एकता के दर्शन होते हैं। देश-भर के स्त्री-पुरुष यहाँ अपनी-अपनी धर्म-भावना लेकर आते हैं और पूरे देश का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं।' उन्होंने कितने ही पर्वतीय स्थानों का भ्रमण कर यह अनुभव किया है। **इस सदी में सर्वप्रथम हिमालय की यात्रा कर समाज व साधुओं को एक नई दिशा दिखाई।** संगीत कला के आप पण्डित व प्रेमी हैं, यह इसी से विदित है कि उन्होंने इस विस्मृत और उच्च कोटि की कला

को 'श्रमण-भजन-प्रचारक संघ' जैसी विशिष्ट संस्था की स्थापना द्वारा सप्राण ही नहीं किया, अपितु उसके द्वारा इस कला के ज्ञाता और उस पर कार्य करने वाले विद्वानों को पुरस्कृत एवं सम्मानित भी कराया है। वे संगीतकार, कलाकार, कवि-साहित्यकार का समादर करते हैं, स्वयं भी अच्छे साहित्यकार हैं। 'महावीर-भक्तिगंगा' में उनके संगीत-प्रवण हृदय की लय सुनायी देती है। हिन्दी में उन्होंने अनेक पुस्तकों का प्रणयन किया है, जैनधर्म को आधुनिक परिवेश में फिट करने का सफलायास परिलक्षित होता है। एक साहित्यकार के रूप में उनकी जागरूक एवं सूक्ष्मदृष्टि समाज और देश की हृदय-गति को पकड़ती चलती है।

दिव्यावदान

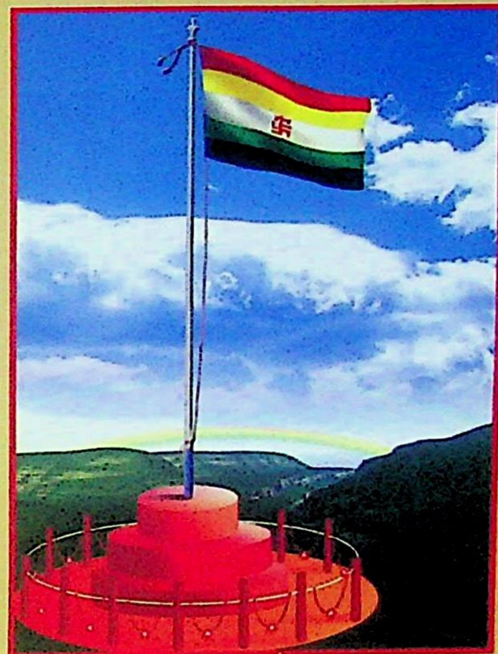

परमपूज्य श्वेतपिच्छाचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज

निःसंदेह आज जीवन के प्रतिमान परिवर्तित हो गये हैं। मनुष्य की सात्त्विक प्रवृत्तियाँ भौतिक ऐश्वर्य की चकाचौंध में सम्यक्त्व को देख नहीं पा रही हैं। ऐसे समय में गुरुदेव का जीवन जो एक खुली पुस्तक है; उसका अवलोकन करना चाहिये। उनमें अदम्य साहस है और एक 'मिशनरी स्पिरिट' है। त्याग, तप, संयम, शौच, अपरिग्रह आदि उत्तम गुणों को अपने आचरण में उतारने वाले आचार्यश्री भगवान महावीर के सच्चे, निष्ठापूर्ण संदेशवाहक हैं। उनका जीवन पावन सुरसरि के सदृश सभी को बिना रंग-भेद या सम्प्रदाय-वर्ग-भेद के समान रूप से पवित्र करने वाला, कलुषहर्ता है, पापमुक्त करने वाला है। सिद्धान्तचक्रवर्ती राष्ट्रसन्त श्वेतपिच्छाचार्यश्री की जीवन-दृष्टि में हिमालय की उच्चता, आकाश की व्यापकता और सागर की गम्भीरता समाहित है। वे जीवन और देश की आधुनिक समस्याओं का समाधान जैनधर्म के परिवेश में खोजने वाले राष्ट्रसन्त

हैं और एक विशाल विश्व-धर्म की स्थापना में दत्तचित्त विश्वपुरुष के रूप में ऊर्ध्वगामी हैं।

'वाग्मी' का विरुद बहुत कम वक्ताओं को प्राप्त होता है; सौभाग्य की बात है कि वह आज आचार्यश्री को उपलब्ध है। विद्वान् वाग्मी महाकुलीन इति यो लोकस्य सम्मत: स मनोज्ञ:, तस्य ग्रहणं प्रवचनस्य लोके गौरवोत्पादनहेतुत्वात्।

तत्त्वार्थवार्त्तिक-भाष्यकार अकलंक देव 'मनोज्ञ' निर्ग्रन्थ की व्याख्या देते हुए कहते हैं कि जो अभिरूप है वह मनोज्ञ है, अथवा जो विद्वान्-विविध विषयों का ज्ञाता, वाग्मी-यशस्वी वक्ता और महाकुलीन आदि रूप से लोक में मान्यता प्राप्त है उसे मनोज्ञ कहा जाता है, क्योंकि उससे शासन की प्रभावना और गौरव-वृद्धि होती है।



जैन ध्वज

आचार्यश्री निश्चय ही वर्तमान काल के मनोज्ञ निर्ग्रन्थ हैं। वे विविध विषयों के ज्ञाता हैं, यशस्वी वक्ता हैं, महाकुलीन हैं और सुयोग्य लेखक-ग्रन्थकार हैं। जिनशासन की उनके द्वारा जो आश्चर्यजनक प्रभावना एवं गौरव-वृद्धि हो रही है वह सर्व-विश्रुत है। उनकी व्याख्यान-सभा में सैकड़ों-हजारों नहीं, लाखों श्रोता उपस्थित होते और उनके प्रवचन को शान्तिपूर्वक सुनते हैं। उनका ऐसा प्रभावक भाषण होता है कि जैन-अजैन, भक्त-अभक्त सभी मुग्ध एवं चित्रलिखित की भाँति उनके भाषण को सुनते तथा पुन:-पुन: सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं। उनका प्रवचन



मोहनजोदड़ों से प्राप्त कायोत्सर्ग मुद्रा में भगवान ऋषभदेव का चित्र



हित, मित और तथ्य की सीमाओं से कभी बाहर नहीं जाता। तथ्य को वे बड़ी निर्भीकता और शालीनता से प्रस्तुत करते हैं। ऐसे ही प्रवक्ता को 'वाग्मी' कहा गया है। आचार्य जिनसेन ने युग-प्रवर्त्तक आचार्य समन्तभद्र को उनकी अन्य विशेषताओं के साथ 'वाग्मी' विशेषता का भी सश्रद्ध उल्लेख किया है।

भगवान् महावीर के जीवन से संबंधित अनेक चित्रों का अन्वेषण और निर्माण आपकी चित्रकला-प्रतिभा का सुपरिणाम है। जैन-ध्वज का निर्धारण आपकी ही अनोखी सूझबूझ है, जिसे जैन-परम्परा के सभी वर्गों ने स्वीकार कर लिया है। चन्द्रप्रभ का सप्तमुख चित्र, जो जैन दर्शन के प्रसिद्ध सिद्धान्त सप्तभंगी का चित्र है, मोहनजोदड़ों से प्राप्त कायोत्सर्ग मुद्रा में ऋषभदेव का चित्र, संगम देव के साथ क्रीड़ारत भगवान् महावीर का चित्र, राजकुमारावस्था में ध्यानरत महावीर का चित्र जैसे दुर्लभ चित्र खोज निकाले और समाज के सामने पहली बार प्रस्तुत किये। अपनी कृति 'तीर्थंकर वर्द्धमान' में जो महावीर-कालीन भारत का मानचित्र दिया है, वह उनके भूगोल-विज्ञान का प्रदर्शक तो है ही, चित्र-विज्ञान का भी प्रकाशक है।

श्री बाबूलाल पाटोदी इन्दौर के शब्दों में 'आचार्यश्री अविराम दौड़ती सदासद्य: उस नदी की भाँति हैं जो हर घाट-वाट पर निर्मल है और जो किंचित् भी कृपण नहीं है.....वे अनेकान्त की मंगलमूर्ति हैं और इसीलिए प्रत्येक दृष्टिकोण का सम्मान करते हैं और उसमें से प्रयोजनोपयोगी निर्दोष तथ्यों को अंगीकार कर लेते हैं; और 'तीर्थंकर' के यशस्वी सम्पादक डॉ. नेमीचन्द जैन की दृष्टि में 'दर्शनार्थी जिनके दर्शन के साथ एक हिमालय अपने भीतर पिघलते देखता है, जो उसके जनम-जनम के सौ-सौ निदाघ शान्त कर देता है। वन्दना से उसके मन में कई पावन गंगोत्रियाँ खुल जाती हैं। इस तरह आचार्यश्री के दर्शन जीवन के

सर्वोच्च शिखर के दर्शन हैं, परमानन्द के द्वार पर 'चत्तारि मंगलं' की वन्दनवार है।

पूज्यश्री साधक तो हैं ही, पर हृदय से कलाकार है, जिनकी परिष्कृत रुचि में काव्य, संगीत, ललित कला और सौन्दर्य-बोध के तत्त्व रचे-पचे हैं। शुद्धता और स्वच्छता, समय की पाबन्दी, कार्यक्रमों की संयोजना और परिचालना में तत्पर शालीनता अर्थात् एक उदार व्यक्तित्व, जो मन को बाँधता है, भावनाओं को उदात्त बनाता है, शान्ति, समता और सौहार्द के सन्देश से जनमानस को प्रेरित करता है, आकुल जीवन को स्थिरता देता है।

आचार्यश्री जैसे गुणग्राही और उदार दृष्टि वाले व्यक्ति दुर्लभ हैं। यदि मुझे गुणग्राही व्यक्तियों की सूची बनाने के लिये कहा जाये तो उसमें पहला नाम आचार्यश्री का ही होगा। गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र आदि सभी बड़ी-बड़ी नदियाँ और संलग्न निर्झर हिमालय से निकलकर दक्षिण आदि दिशा में बहते हैं। अपवाद से एक निर्झर दक्षिण में प्रादुर्भूत होकर हिमालय में बद्रीनाथ तक पहुँचा। उस निर्झर का नाम है आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज! आचार्यश्री ऐसे अक्षय स्रोत हैं जिन्होंने दक्षिण से उत्तर की ओर बहकर समूचे राष्ट्र को अपनी आध्यात्मिक पीयूष धारा से आप्लावित कर दिया है। जैन संस्कृति के प्रसार में आचार्यश्री जी का योगदान स्मरणीय है।

विश्ववंद्य आचार्यश्री की अगाध विद्वत्ता, प्रगाढ़ धर्मश्रद्धा, अनुपम त्याग तपस्या से विश्व में वास्तविक ही धर्म की ज्योति प्रज्ज्वलित हो रही है। आप अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी है।

मुझे लगता है जो ढाई हजार वर्ष पूर्व सत्य और अहिंसा की जो मशाल भगवान महावीर ने जलाई थी, वह अनेक आचार्यों के हाथ में होती हुई अब आचार्यश्री के हाथ में आ थमी है।

दर्शन-साहित्य, न्याय आदि के क्षेत्रों में अमूल्य योगदान देनेवाले धर्म और संस्कृति के मूल्यों के संरक्षक विद्वानों को सम्मानित कराने का सम्पूर्ण श्रेय पूज्य आचार्यश्री को है। इस बीसवीं शती की महान आशा की किरण, जल ज्योति जगाने वाले यदि कोई हैं तो केवल आचार्यश्री के चरण हैं, इनकी शरण से हम सबको सत्पथ का दर्शन मिलेगा। सही अर्थों में महाराजश्री राष्ट्र की कुंजी हैं, राष्ट्रसन्त हैं, राष्ट्र का गौरव हैं। वे किसी एक वर्ग, किसी एक

धर्म, एक सम्प्रदाय विशेष के नहीं हैं। आचार्यश्री हमारे प्राचीन तीर्थंकर, आचार्य, श्रमण और संतों की परम्परा के प्रतिनिधि हैं। उन्होंने अपनी पदयात्रा के माध्यम से भारतीय जनता के मन में आध्यात्मिक मूल्यों, सदाचार, अहिंसा के प्रति आस्था को न केवल बनाये रखा है बल्कि और दृढ़ किया है। मूल्यों को दृढ़तर बनाया है। आचार्यश्री के लिए सारा विश्व एक परिवार है, आप सागर हैं, सबको प्रक्षालित कर सुख और समृद्धि का सन्देश देते हैं, आपके आने से पीड़ितों को साहस और सम्बल मिलता और आपके प्रेमरूपी वचनों से शान्ति प्राप्त होती है। भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान सदा ऊँचा रहा है। आचार्यश्री ऐसे सन्त हैं जिन्होंने राष्ट्र को दिया ही दिया है, उन्होंने दिशा दी है, प्रकाश दिया है। उनकी आपसी समझ और देश की समस्या को समझने के लिए हृदय की भाषा सर्वोपरि होती है जो आचार्यश्री जैसे सन्तों से ही प्राप्त होती है।

हमारे देश पर सन्तों का बहुत प्रभाव है, जो भी व्यक्ति उनके सम्पर्क में आता है, उनसे प्रभावित होता है और देश पर उसका असर पड़ता है। गुरुदेव सरीखे सन्त ही देश को उन्नति की राह दिखा सकते हैं। जो व्यक्ति स्वयं को देख ले, जान ले, समझ ले वही पूर्ण विरक्त व्यक्ति हो सकता है। आचार्यश्री समाज व देश से ऊपर विश्वशान्ति की बात करते हैं। आचार्यश्री सारे देश के मान्य धर्माचार्य हैं, जिनकी संगति एवं उपदेश से नैतिक, आध्यात्मिक विकास होता है।

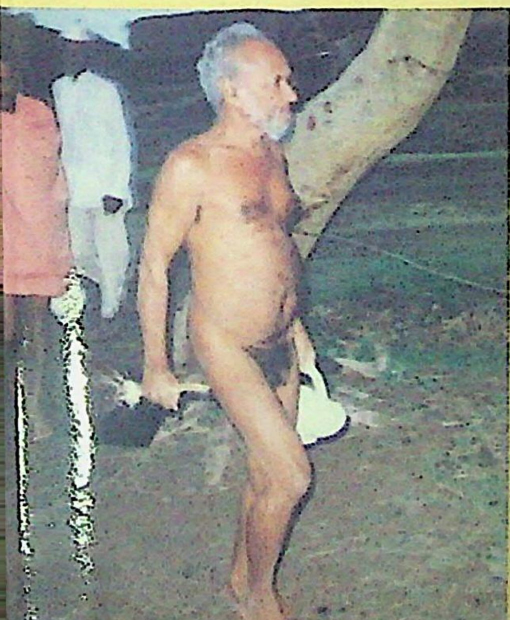
आचार्यश्री भारतीय संस्कृति के शिखर पुरुष हैं ऐसे गुरुवरों के पावन सान्निध्य और मार्गदर्शन के कारण ही भारत की सांस्कृतिक परम्परा इस घोर भौतिकवादी युग में भी सुरक्षित बची हुई है। आचार्यश्री जी ने भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण में नई चेतना और जागृति पैदा की है। भारत की महानता एवं पवित्रता हिमालय जैसे पर्वत एवं गंगा जैसी नदी के कारण नहीं है, अपितु आचार्यश्री जैसे सत्साधुओं के कारण है।

आचार्यश्री मानव धर्म और शान्ति के प्रणेता हैं। उन्होंने आचार्य पद को गौरव प्रदान किया है। वे किसी एक वर्ग के नहीं बल्कि सभी के हैं। जैन और अजैन सभी उनके उपदेशों से

लाभान्वित होते हैं। वे मानव और विश्व धर्म के पोषक हैं। आचार्यश्री के माध्यम से श्रमण संस्कृति की धारा हिमालय से कन्याकुमारी तक फैली है। उन्होंने आचार्य परम्परा को जीवन्त रखा है। राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित हर महान आयोजन को उनका निर्देशन प्राप्त हुआ है। यदि पूज्य आचार्यश्री के विचारों को घर-घर में पहुँचा दिया जाये, तो इस देश में शान्ति की स्थापना एवं सौहार्द के लिए किसी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं रहेगी। यह भारतभूमि कृषि व ऋषि प्रधान है। आचार्यश्री सदृश सन्तों का जन्म नहीं, आविर्भाव होता है, आचार्यश्री की यह विशेषता है कि उन्हें विद्या, अपरिग्रह एवं वैराग्य में ही आनन्द मिलता है।

जैन समाज में एकता की भावना का श्रेय उनको ही है। वे प्राणी मात्र के कल्याण के लिए विश्व धर्म का प्रचार कर रहे हैं। उनका सम्पूर्ण आचरण और जीवन स्व-पर कल्याण के लिए ही है। उनकी चर्चा भी बहुजन हिताय की उक्ति पर खरी उतरी है। आचार्यश्री ने देश भर में पदयात्रा कर अपनी अमृतवाणी से जन-जन को प्रभावित किया है। उनके चिंतन में उदारता है और व्यक्तित्त्व में विराटता। उनके नेतृत्व में सम्पूर्ण भारत में ही नहीं विश्व के कोने-कोने में अहिंसा का उद्घोष हो रहा और आगे होता रहेगा।

आचार्यश्री का वैयक्तित्व वैश्विक है, वे जैनधर्म को मानव धर्म, विश्वधर्म मानते हैं, अनेकान्त जो जैनदर्शन की चिन्तन प्रक्रिया है उसके और स्याद्वाद के वे चलते-फिरते उदाहरण हैं। आचार्यश्री सदृश्य सन्तों का चिन्तन सदैव लोकहितकारी कार्यों के लिए समर्पित रहता है। वे तो कल्पवृक्ष के समान, लोककल्याण के निमित्त एवं महामंगल-स्वरूप होते हैं। ऐसे संतों की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से ही लक्ष्मीपुत्रों के द्वारा सरस्वती के आराधकों का सम्मान होता है। आचार्यश्री आत्म-साधना के साथ जनहित के भी अनेक कार्यों की प्रेरणा देते रहते हैं एवं उन्हीं की प्रेरणा से समाज में अनेक महान कार्य हुये हैं। आचार्यश्री ने मानवता को सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया है जिसप्रकार पर्यावरण की शुद्धि के

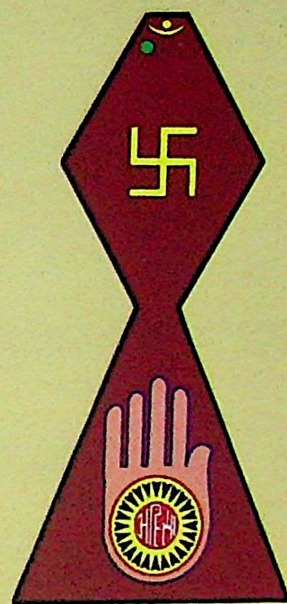


मंगल विहार करते हुए पूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज

लिये ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है, वैसे ही साधु-सन्तों की साधना, ज्ञान एवं आदर्श समाज के भाव और वातावरण को पवित्र एवं शुद्ध बनाने के लिये आवश्यक हैं।

आचार्यश्री एक विद्वान् और तपोनिष्ठ महान साधु है। पूज्यश्री आध्यात्मिक आकर्षण के केन्द्र है, जिसप्रकार चुम्बक लौह वस्तु को अपनी ओर खींचता है, उसी प्रकार आप अपने सम्पर्क में आये हुए व्यक्तियों को खींच लेते है तथा यथायोग्य उन व्यक्तियों को त्याग, व्रत और धर्म की शिक्षा दिया करते है। स्व-पर कल्याणकारी महात्मा विरले ही धरती तल को शोभित करते हैं, उन्हीं में से एक विभूति आचार्य है। वह एक महान् सच्चे साधु है, मुनिवर है। आचार्यश्री सब साधु, मुनियों, आर्यिकाओं आदि त्यागियों को पढ़ाते है, सम्यग्ज्ञान वितरण करनेवाले पूज्यश्री के कितने बड़े उपकार हो रहे थे। अपने या इतर संघस्थ शिष्यों को निष्काम भाव से पढ़ाकर धर्मध्यान देकर उनकी आत्माओं को सुसंस्कृत एवं ज्ञानमयी बना देने का महत् कार्य आचार्यश्री करते है। ऐसे महान साधक तपस्वी के गुणों का वर्णन कहाँ तक करें, असमर्थ हूँ। पूज्य आचार्यश्री का उपदेश तात्त्विक, मधुर व प्रभावशाली होता है। आप स्याद्वाद के दृष्टिकोण से व्यवहार व निश्चयनय की अनुकूलता सिद्ध करते है, आपके उपदेशामृत का पान करने से श्रोता संतुष्ट होकर आत्मविभोर हो जाते है। पूज्य आचार्यश्री जैन साधु व समाज के सामने अगर कोई विकट समस्या आती है तो वह समस्या का समाधान सहज रीति, युक्ति से बड़े-बड़े वाद-विवाद पर लोगों से विजय पाई और आखिर ज्ञान की महिमा से कभी रंचमात्र उनके ऊपर उदासीपन नहीं आया। दिगम्बर त्यागियों एवं श्रावकगणों को आचार्यश्री महाछत्र के समान आधार है, हम सब लोगों के सन्मार्ग-दर्शक है। सरस्वती के वरद पुत्र है। पूज्य आचार्यश्री महाराज प्रबुद्ध मुनियों में से एक है। उन्होंने आगम का विधिवत् अध्ययन कर उसका अनुगमन किया है। उन्होंने अपनी सरल तथा उत्साहवर्धक पाठन शैली से कितने ही शिष्यों का जीवन समुन्नत बनाया है। विद्याध्ययन का फल सम्यक्चारित्र को धारण करना है। उसके बिना **'ज्ञानं भारं क्रिया विना।'** के सिद्धान्तानुसार कोरा ज्ञान एक भार रूप ही है; ऐसी आपकी श्रद्धा है और उसी श्रद्धा के अनुसार आपने विद्याध्ययन के अनन्तर महाव्रत धारण किये थे। आपकी आगम निष्ठा और तपश्चर्या अनुकरणीय है।

पूज्य आचार्यश्री उन संतों में गणनीय हैं, जिन्होंने विश्व को अध्यात्म का प्रकाश प्रदान किया है। उनका त्याग, साधना और तपश्चर्या अद्वितीय है। जिन दिनों वे जन्मस्थान के विद्यालय के छात्र थे, उन दिनों उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि यह छात्र एक असाधारण संत बनेगा। छात्रवस्था में उनका तीव्र क्षयोपशम और मेधा की प्रशंसा उनके गुरुजन करते थे। न्याय जैसे शुष्क विषय को उन्होंने आत्मसात् करके अनेकों को उसका अध्यापन साध्यावस्था में किया है। ज्ञान के साथ यदि चारित्र भी प्राप्त हो जाये तो उसे मणि-कांचन संयोग कहा जाता है। महाराज ने दोनों को प्राप्त किया और यावज्जीवन दोनों का प्रचार किया। आचार्यश्री श्रमण संस्कृति के आदर्श और निर्ग्रन्थ परम्परा को प्रगति प्रदान करनेवाले विद्वान साधु है। आचार्यश्री प्राय: ध्यान और अध्ययन में ही वे रहा करते है। निर्दोष और कठिन दिगम्बर व्रत को धारण करते हुए आचार्यश्री ने अपने धर्मोपदेश से अगणित भव्यप्राणियों का उपकार किया है। पूज्यश्री इस युग के ख्यातिप्राप्त, शास्त्रज्ञाता एवं धर्म-संरक्षक है। वे विद्वानों को साहित्य-सृजन की ओर भी प्रेरित करते है। इस युग में जिन्होंने जैनधार्म का प्रचार-प्रसार किया है, उन महापुरुषों में आचार्यश्री एक सफल महान साधक है। आचार्यश्री अनेक भाषाओं के ज्ञाता, चारित्र परायण तपोनिधि, साधु एवं समाज के देदीप्यमान रत्न है।


जैन प्रतीक चिह्न

पूज्यश्री सदाचार के पूर्णतया पोषक, स्पष्टवक्ता है। विचार-विमर्श में विरोध पक्ष की सुनने की क्षमता रखते है तथा उचित को मानते भी है। मैं उनके गुणों में आदर भाव रखता हूँ। आचार्यश्री अपने चारित्र के पक्के और आगम के सच्चे प्रचारक है। आगमानुकूल कई भाषाओं में उपदेश देते है। तीर्थक्षेत्र पर अंतरंग से भक्ति रखते है। ऐसे अनेक गुण सम्पन्न पूज्यश्री का संक्षिप्त जीवनवृत इसप्रकार है-

सिद्धान्तचक्रवर्ती परमपूज्य श्वेतपिच्छाचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज का

संक्षिप्त जीवनवृत्त

1.	**पूर्व नाम**	-	श्री सुरेन्द्र उपाध्ये
2.	**पिता**	-	श्री कल्लप्पा उपाध्ये
3.	**माता**	-	श्रीमती सरस्वती उपाध्ये
4.	**जन्म स्थान व दिनांक**	-	शेडवाल (कर्नाटक) दिनांक 22 अप्रैल 1925
5.	**प्रारम्भिक शिक्षा**	-	शान्तिसागर आश्रम (शेडवाल)
6.	**प्रारम्भिक व्यवसाय**	-	कृषि
7.	**क्षुल्लक दीक्षा**	-	15 अप्रैल 1946 परमपूज्य आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज द्वारा तमदड्डी (कर्नाटक)
	नामकरण	-	क्षुल्लकश्री पार्श्वकीर्ति वर्णी
8.	**मुनि दीक्षा**	-	25 जुलाई 1963, परमपूज्य आचार्यरत्नश्री देशभूषण जी मुनिराज द्वारा दिल्ली
	नामकरण	-	मुनिश्री विद्यानन्द
9.	**उपाध्याय दीक्षा**	-	17 नवम्बर 1974, परमपूज्य आचार्यरत्नश्री देशभूषण जी मुनिराज द्वारा दिल्ली
	नामकरण	-	उपाध्यायश्री विद्यानन्द मुनि (बीसवीं शताब्दी के प्रथम उपाध्याय)
10.	**एलाचार्य दीक्षा**	-	17 नवम्बर 1978, दिल्ली
	नामकरण	-	एलाचार्यश्री विद्यानन्द मुनि

11. **सिद्धान्तचक्रवर्ती उपाधि** – 6 नवम्बर 1979, चतुः-संघ द्वारा प्रदत्त इन्दौर

12. **आचार्य पदारोहण** – 28 जून 1987, परमपूज्य आचार्यरत्नश्री देशभूषण जी के आदेशानुसार चतुः-संघ द्वारा प्रदत्त दिल्ली

नामकरण – आचार्यश्री विद्यानन्द मुनिराज

13. **आचार्यश्री द्वारा प्रदत्त दीक्षायें –**

एलाचार्य पद :-

एलाचार्यश्री श्रुतसागर जी, दिल्ली, 2006
एलाचार्यश्री वसुनन्दि जी, दिल्ली, 2009

उपाध्याय पद :-

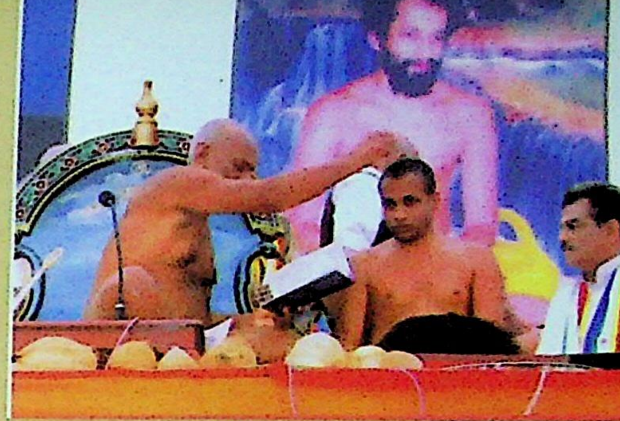
उपाध्यायश्री गुप्तिसागर जी, इन्दौर 1991
उपाध्यायश्री श्रुतसागर जी, दिल्ली 1998
उपाध्यायश्री निर्णय सागर जी, दिल्ली 2002
उपाध्यायश्री प्रज्ञसागर जी, दिल्ली 2009

मुनि दीक्षा :-

मुनिश्री धर्मानन्द सागर जी

गणिनी पद :-

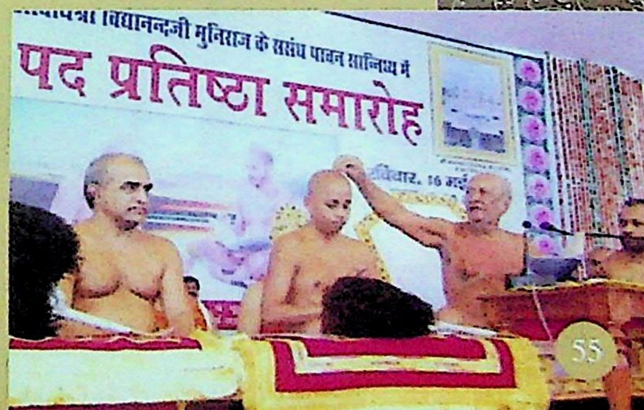
गणिनीश्री प्रज्ञमती जी, दिल्ली 2005
गणिनीश्री विद्याश्री जी, दिल्ली 2010



परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज एलाचार्य श्रुतसागर जी पर 'एलाचार्य पद' के संस्कार करते हुए



परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज एलाचार्य वसुनन्दि जी पर 'एलाचार्य पद' के संस्कार करते हुए



परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज उपाध्याय प्रज्ञसागर जी पर 'उपाध्याय पद' के संस्कार करते हुए

क्षुल्लक दीक्षा :-

क्षुल्लकश्री धर्मानन्द जी, श्रवणबेळगोल 1980

क्षुल्लकश्री ज्ञानानन्द जी, श्रवणबेळगोल 1980

14. **आचार्यश्री निर्यापकाचार्य के रूप में**

मुनिश्री धर्मानन्दसागर जी की समाधि, दिल्ली 2006

15. **आचार्यश्री के निर्देशन, मार्गदर्शन, प्रेरणा एवं आशीर्वाद से सम्पन्न अतिमहत्त्वपूर्ण कार्य**

1. सन् 1966-67 जैन भजनों के ग्रामोफोन रिकार्ड्स का प्रथम बार निर्माण
2. सन् 1971 श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, श्रीनगर (गढ़वाल) का जीर्णोद्धार
3. सन् 1974 जैन धवज और जैन प्रतीक का निर्माण
4. सन् 1974 धर्मचक्र प्रवर्तन
5. सन् 1974 भगवान महावीर का 2500वाँ निर्वाण महोत्सव
6. सन् 1976 समयसार, द्रव्यसंग्रह, छहढाला की कैसेटों का प्रथम बार निर्माण
7. सन् 1977 समयसार आदि ग्रन्थों का सम्पादन-प्रकाशन
8. सन् 1978 संगीत समयसार ग्रन्थ का सम्पादन-प्रकाशन
9. सन् 1978 कुन्दकुन्द भारती की स्थापना।
10. सन् 1980 जनमंगल कलश प्रवर्तन
11. सन् 1981 श्रवणबेळगोल स्थित गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली की प्रतिमा का सहस्राब्दी समारोह एवं महामस्तकाभिषेक
12. सन् 1982 भगवान बाहुबली की 45फुट ऊँची उत्तुंग प्रतिमा का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महामस्तकाभिषेक, धर्मस्थल
13. सन् 1983 कुम्भोज बाहुबली क्षेत्र पर अतिक्रमण का कड़ा विरोध एवं उसका समाधान
14. सन् 1985-86 श्रावकाचार वर्ष
15. सन् 1986 गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली की प्रतिमाओं का उत्तर भारत में निर्माण गोम्मटगिरि (इन्दौर), फिरोजाबाद (उ.प्र.)



जनमंगल कलश

16. सन् 1987 भरत चैत्यालय की स्थापना, कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली
17. सन् 1987 कुन्दकुन्द भारती का उद्घाटन
18. सन् 1988 अखिल भारतीय आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी वर्ष समारोह
19. सन् 1988 प्राकृतविद्या (त्रैमासिक-शोध पत्रिका)
20. सन् 1991 बावनगजा स्थित चौरासी फुट उत्तुंग भगवान आदिनाथ की प्रतिमा का जीर्णोद्धार एवं महामस्तकाभिषेक
21. सन् 1994 सम्मेदशिखर आन्दोलन को गति एवं मार्गदर्शन
22. सन् 1996 श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली में प्राकृत अध्ययन का शुभारम्भ
23. सन् 1998 श्रीमहावीरजी (राजस्थान) स्थित भगवान महावीर की प्रतिमा का सहस्राब्दी समारोह एवं महामस्तकाभिषेक
24. सन् 1998 कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली में सम्राट् खारवेल भवन की स्थापना
25. सन् 2001 अहिंसा स्थल दिल्ली में भगवान महावीर की प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक
26. सन् 2003 परमपूज्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागर जी मुनिराज का 131वां जन्म-जयन्ती समारोह 'संयम-वर्ष'
27. सन् 2004 चारित्रचक्रवर्ती परमपूज्य आचार्यश्री शान्तिसागर जी मुनिराज का 50वां समाधि-दिवस समारोह 'स्वर्ण समाधि वर्ष'
28. सन् 2004 भगवान महावीर की जन्मभूमि वासोकुण्ड, विदेहकुण्डपुर, बिहार में भव्य दिगम्बर जैन मन्दिर का निर्माण
29. सन् 2006 श्रवणबेलगोल स्थित गोम्मटेश्वर भगवान् बाहुबली की प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक, मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद
30. सन् 2006 भरतक्षेत्र नजफगढ़, दिल्ली में भगवान आदिनाथ की विशाल प्रतिमा का पंचकल्याणक एवं महामस्तकाभिषेक



नवनिर्मित श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, वासोकुण्ड, विदेह कुण्डपुर, जिला- मुजफ्फरपुर, वैशाली, बिहार

31. सन् 2006 रानीला, हरियाणा में पूज्य एलाचार्यश्री श्रुतसागर जी के पावन सान्निध्य एवं आचार्यश्री के मंगल आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन में पंचकल्याणक
32. सन् 2007 धर्मस्थल, कर्नाटक स्थित भगवान बाहुबली की प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक, मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद
33. सन् 2008 बावनगजा, बड़वानी, मध्यप्रदेश स्थित भगवान आदिनाथ की 84 फुट उत्तुंग प्रतिमा का महामस्तकाभिषेक
34. सन् 2008 मथुरा चौरासी में भगवान जम्बूस्वामी की विशाल प्रतिमा का पंचकल्याणक एवं महामस्तकाभिषेक समारोह एलाचार्य श्रुतसागरजी, उपाध्याय वसुनन्दिजी के सान्निध्य एवं आचार्यश्री के मंगल आशीर्वाद से
35. सन् 2010 कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली में कातंत्र-कालाप ग्रन्थालय की स्थापना
36. नवनिर्मित नूतन दिगम्बर जैन मन्दिर, कालकाजी क्षेत्र, नई दिल्ली
37. जैन समाज को भारतीय संविधान में प्रदत्त अल्पसंख्यक घोषित करने का आन्दोलन
38. समाज में व्याप्त कुरीतियों व मिथ्यात्व के संस्कारों का निवारण
39. श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली में आचार्य कुन्दकुन्द स्मृति व्याख्यानमाला का शुभारम्भ
40. प्राकृत भाषा के विद्वानों को राष्ट्रपति पुरस्कार का शुभारम्भ
41. कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली में मानस्तम्भ की स्थापना
42. कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली में साहू श्री अशोक जैन की मूर्ति की स्थापना

16. आचार्यश्री की प्रेरणा एवं उपदेश से निर्मित संस्थाएँ :-

1. कुन्दकुन्द भारती न्यास, नई दिल्ली
2. मुनि विद्यानन्द हाई स्कूल, शेडवाल
3. मुनि विद्यानन्द शोध संस्थान, बड़ौत
4. श्रमण जैन भजन प्रचारक संघ, दिल्ली
5. वीर निर्वाण भारती, मेरठ
6. वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर
7. विश्वधर्म ट्रस्ट, कोटा
8. शौरसेनी प्राकृत संसद् की स्थापना
9. जैन पर्सनल लॉ बोर्ड का गठन

17. आचार्यश्री की मांगलिक प्रेरणा से प्रवर्तित पुरस्कार :-

1. वृषभदेव संगीत पुरस्कार
2. आचार्य उमास्वामी पुरस्कार
3. ब्राह्मी पुरस्कार
4. चारित्रचक्रवर्ती पुरस्कार
5. संगीत समयसार पुरस्कार
6. आचार्य विद्यानन्द पुरस्कार
7. साहू अशोक जैन पुरस्कार
8. अहिंसा पुरस्कार
9. आचार्य अमृतचन्द्र पुरस्कार
10. आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार
11. सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र पुरस्कार
12. कुन्दकुन्द पुरस्कार

18. आचार्यश्री की लेखनी से प्रसूत साहित्य :-

1. पिच्छी कमण्डलु
2. अपरिग्रह से भ्रष्टाचार उन्मूलन
3. दैव और पुरुषार्थ
4. निर्मल आत्मा ही समयसार
5. भक्ति रस के अंगूर
6. विश्वधर्म के मंगलपाठ
7. समय का मूल्य
8. अनेकान्त-सप्तभंगी-स्याद्वाद
9. सप्तव्यसन
10. विश्वधर्म के दस लक्षण
11. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग
12. नारी का स्थान और कर्तव्य
13. गुरु संस्था का महत्त्व
14. ज्ञानदीप जलें
15. मानव धर्म
16. ईश्वर कहाँ है?
17. सुपुत्रः कुलदीपकः
18. पावन पर्व रक्षाबन्धन
19. तीर्थंकर वर्द्धमान
20. मन्त्र, मूर्ति और स्वाध्याय
21. वीर प्रभु
22. सर्वोदय तीर्थ
23. सोने का पिंजरा
24. विश्वधर्म की रूपरेखा
25. अहिंसा - विश्वधर्म
26. दिगम्बर जैन साहित्य में विकार
27. आध्यात्मिक सूक्तियाँ
28. मंगल कुमकुम पाठ
29. अग्नि और जीवत्व शक्ति
30. जैन संस्कृति में दान और पूजा
31. महात्मा ईसा
32. गुरु परिवाद विचार (मराठी)

33. महादेवी पद्मावती
34. वन का पति वनस्पति
35. शब्द साधना
36. गोम्मटेशजिन श्री बाहुबली स्वामी
37. 2500वाँ निर्वाण उत्सव कैसे मनायें
38. आदि कृषि-शिक्षक तीर्थंकर आदिनाथ
39. स्वतंत्रता, समाजवाद और अनुशासन
40. श्रमण संस्कृति और दीपावली
41. धर्मनिरपेक्ष नहीं, सम्प्रदायनिरपेक्ष
42. कल्याण मुनि और सम्राट् सिकन्दर
43. जैनधर्म, अहिंसा एवं महात्मा गांधी
44. बाहुबलिस्स रायहाणी तक्खसिला
45. सूतक-पातक न मानने वाला मिथ्यादृष्टि
46. प्रजातन्त्र के मूलमन्त्र
47. मूर्ति से मूर्तिमान की पूजा
48. आर्ष परम्परा में आर्यिका दीक्षा
49. मुनिभक्त क्षेत्रपालों का शास्त्रोक्त स्वरूप
50. विश्वप्रसिद्ध पद्मावती की देन
51. जैन शासन ध्वज
52. मोहनजोदड़ो - जैन परम्परा और प्रमाण (हिन्दी, मराठी, कन्नड़, अंग्रेजी)

<u>मंगल प्रवचनों का संग्रह</u>

1. गुरुवाणी (5 भाग)
2. मंगल प्रवचन
3. अमृतवाणी
4. निर्ग्रन्थ प्रवचन
5. स्वानंद विद्यामृत (5 भाग)

<u>पावन प्रेरणा से प्रकाशित</u>

1. तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर
2. सुसंगीत जैन पत्रिका
3. जैन इतिहास पर लोकमत
4. जैनशासन का ध्वज
5. हिमालय में दिगम्बर मुनि
6. पुरुदेव भक्ति गंगा
7. तीर्थंकर महावीर भक्ति गंगा
8. नेमिनाथ भक्ति गंगा
9. पार्श्वनाथ भक्ति गंगा
10. तमिलनाडू का जैन इतिहास
11. जैन वास्तुविद्या
12. वाग्दीक्षा स्वरूप एवं महत्त्व
13. गोम्मटेश थुदि
14. छहढाला

15. ब्राह्मी लिपि प्रवेशिका
16. विवाह
17. द्रव्यसंग्रह
18. खरा सो मेरा
19. वारस अणुपेक्खा
20. जैनधर्म प्राचीन स्वतन्त्र धर्म
21. समयसार
22. नियमसार
23. प्रवचनसार
24. रयणसार
25. महावीर पदावली
26. पासणाहचरिउ
27. विदेह कुण्डपुर
28. वनराज से जिनराज
29. भरत और भारत
30. तिरुक्कुरुळ
31. वैराग्य भावना
32. उपसर्ग निवारण
33. ओ ना मा सी ध म्
34. जंबू-सामी-चरिउ
35. तत्त्वार्थसूत्र
36. शौरसेनी प्राकृत और उसका साहित्य
37. भारतीय संस्कृति और श्रमण-परम्परा
38. वीर निर्वाण विचार और सेवा
39. भक्ति के अंगूर और संगीत समयसार
40. शौरसेनी प्राकृत और उसका साहित्य
41. मोहनजोदड़ो जैन परम्परा और प्रमाण
42. प्राकृत और जैनधर्म का अध्ययन
43. Harappa and Jainism
44. Barasa Anuvekha
45. The Jain Law
46. Mahavira and his philosophy of life
47. महावीर पदावली
48. प्राकृत भाषा स्तबक
49. प्राकृत साहित्य स्तबक
50. Rishabhaputra Bharat aur Bharat
51. आध्यात्मिक भजन संग्रह
52. तत्त्वार्थसूत्र-प्रदीपिका
53. जैनधर्म का सरल इतिहास
54. वनराज से जिनराज
55. शांतिसागर चरित्र
56. समयसार (अंग्रेजी)
57. जैनधर्म में वर्षायोग
58. तत्त्वार्थसूत्र (अंग्रेजी)
59. शौरसेनी प्राकृत भाषा एवं उसके साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
60. कलिंग चक्रवर्ती महाराजा खारवेल के शिलालेख का विवरण

आचार्यश्री पर प्रकाशित

1. गौरव गाथा
2. विश्वधर्म प्रवर्तक मुनिश्री विद्यानन्द जी
3. मुनि विद्यानन्द की जीवनधारा
4. वन्दे तद्गुणलब्धये (हिन्दी, मराठी)
5. श्वेतपिच्छाचार्य का आध्यात्मिक क्षितिज
6. विद्यावदान

19. आचार्यश्री के पावन सान्निध्य में सम्पन्न पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव :-

1. बैडकीहाल ग्राम (कर्नाटक)
2. बुवनाल (महाराष्ट्र)
3. श्रवणबेलगोल (कर्नाटक)
4. धर्मस्थल (कर्नाटक)
5. बावनगजा (म.प्र.)
6. गोम्मटगिरि (इन्दौर)
7. शामली (उ.प्र.)
8. बड़ौत (उ.प्र.)
9. फरीदाबाद (हरियाणा)
10. ऋषभ विहार (दिल्ली)
11. बाहुबली एन्क्लेव (दिल्ली)
12. वसन्त कुंज (दिल्ली)
13. विश्वास नगर (दिल्ली)
14. विकासपुरी (दिल्ली)
15. शालीमार बाग (दिल्ली)
16. ग्रीनपार्क (दिल्ली)
17. नजफगढ़ (दिल्ली)
18. कृष्णा नगर (दिल्ली)
19. कालकाजी (दिल्ली)

20. आचार्यश्री के पावन वर्षायोग :-

क्र.	वर्ष		स्थान
1.	1946	क्षुल्लक पद	कोण्णूर (कर्नाटक)
2.	1947		हुमचा (कर्नाटक)
3.	1948		कुम्भोज (महाराष्ट्र)
4.	1949		शेडवाल (कर्नाटक)
5.	1950		शेडवाल (कर्नाटक)
6.	1951		शेडवाल (कर्नाटक)

7.	1952		शेडवाल (कर्नाटक)
8.	1953		शेडवाल (कर्नाटक)
9.	1954		शेडवाल (कर्नाटक)
10.	1955		शेडवाल (कर्नाटक)
11.	1956		शेडवाल (कर्नाटक)
12.	1957		हुमच (कर्नाटक)
13.	1958		सुजानगढ़ (राजस्थान)
14.	1959		सुजानगढ़ (राजस्थान)
15.	1960		बेलगाम (कर्नाटक)
16.	1961		कुन्दकुन्दाद्रि (कर्नाटक)
17.	1962		शिमोगा (कर्नाटक)
18.	1963	मुनि पद	दिल्ली (लाल मन्दिर)
19.	1964		जयपुर (राजस्थान)
20.	1965		फिरोजाबाद (उ.प्र.)
21.	1966		दिल्ली (समन्तभद्र विद्यालय)
22.	1967		मेरठ (उ.प्र.)
23.	1968		बड़ौत (उ.प्र.)
24.	1969		सहारनपुर (उ.प्र.)
25.	1970		श्रीनगर, गढ़वाल
26.	1971		इन्दौर (म.प्र.)
27.	1972		श्रीमहावीरजी (राज.)
28.	1973		मेरठ कैन्ट (उ.प्र.)
29.	1974		दिल्ली (जैन बालाश्रम)
30.	1975	उपाध्याय पद	जगाधरी (हरियाणा)
31.	1976		दिल्ली (चांदनी चौक)

32.	1977		बड़ौत (उ.प्र.)
33.	1978		दिल्ली (पहाड़ी धीरज)
34.	1979	एलाचार्य पद	इन्दौर, माधोवस्तिका
35.	1980		श्रवणबेळगोल (कर्नाटक)
36.	1981		श्रवणबेळगोल (कर्नाटक)
37.	1982		कोथली (कर्नाटक) शान्तिगिरि
38.	1983		कुम्भोज बाहुबली (महाराष्ट्र)
39.	1984		मुम्बई (तीन मूर्ति, बोरीवळी)
40.	1985		इन्दौर (म.प्र.) गोम्मटगिरि
41.	1986		दिल्ली (कुन्दकुन्द भारती)
42.	1987	आचार्य पद	दिल्ली (कुन्दकुन्द भारती)
43.	1988		कोथली (कर्नाटक) शान्तिगिरि
44.	1989		कोथली (कर्नाटक) शान्तिगिरि
45.	1990		बारामती (महाराष्ट्र)
46.	1991		दिल्ली (कुन्दकुन्द भारती)
47.	1992		दिल्ली (कुन्दकुन्द भारती)
48.	1993		दिल्ली (ग्रीनपार्क)
49.	1994		दिल्ली (कुन्दकुन्द भारती)
50.	1995		दिल्ली (बाहुबली एन्क्लेव)
51.	1996		दिल्ली (कुन्दकुन्द भारती)
52.	1997		जयपुर (राजस्थान)
53.	1998		दिल्ली (न्यू रोहतक रोड़)
54.	1999		दिल्ली (ग्रीनपार्क)
55.	2000		दिल्ली (जैन बालाश्रम)
56.	2001		दिल्ली (अहिंसा स्थल)

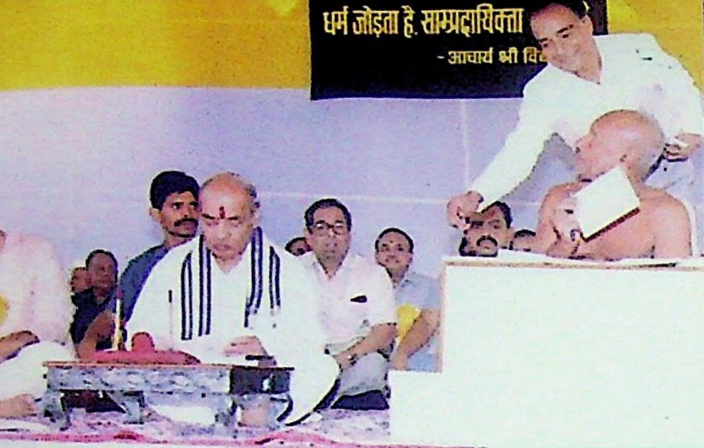
57.	2002	दिल्ली (आर.के. पुरम्)
58.	2003	दिल्ली (कुन्दकुन्द भारती)
59.	2004	दिल्ली (कुन्दकुन्द भारती)
60.	2005	दिल्ली (कुन्दकुन्द भारती)
61.	2006	दिल्ली (कुन्दकुन्द भारती)
62.	2007	दिल्ली (कुन्दकुन्द भारती)
63.	2008	दिल्ली, (ऋषभ विहार)
64.	2009	दिल्ली (ग्रीनपार्क)
65.	2010	दिल्ली (कुन्दकुन्द भारती)
66.	2011	दिल्ली (ग्रीनपार्क)
67.	2012	दिल्ली (ग्रीनपार्क)

पूज्य गुरुदेव जैसे विशाल व्यक्तित्व, विपुल चिन्तन और विचारधारा के धनी, सत्कर्मों के प्रति प्रेरणा के अजस्र स्रोत तथा अहर्निश समाज के सर्वमुखी उन्नयन में दत्तचित्त को एक लघु ग्रन्थ में समाहित करना असम्भव है। मेरा प्रबल पुण्य का उदय है कि ऐसे अद्वितीय आचार्यश्री के चरणों में रहकर अध्ययन व वैय्यावृत्ति करने का अवसर प्राप्त हो रहा है। मैं उनका अन्तेवासी शिष्य बनकर रहूँ ऐसी परम असीम कृपा पूज्य गुरुदेव हमेशा बनाए रखें, यही मेरी अंतरंग भावना है।

अज्ञानोपास्ति अज्ञानं ज्ञानी ज्ञानसमाश्रयः।
ददाति यस्तु यस्याऽस्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः॥ -(इत्योपदेश, 23)

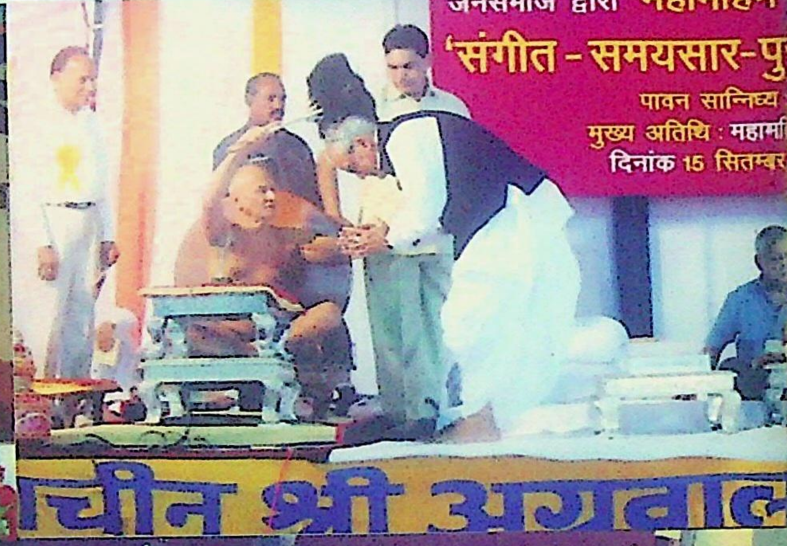
उनके पास जो हो, वही मुझे चाहिए और मेरी अंतःकरण की लगन है तो मैं हर प्रकार से चेष्टा कर इन गुणों को अवश्य यथाशक्ति ग्रहण करूँगा।

आचार्यश्री ने समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए जैसा मार्ग दर्शन किया, उसके प्रतिसार राष्ट्र एवं समाज कृतज्ञ है। उनका सान्निध्य दीर्घकाल तक निर्बाध रूप से प्राप्त होता रहे। यही स्वर्ण जयंती मुनि दीक्षा उत्सव का उद्देश्य है।

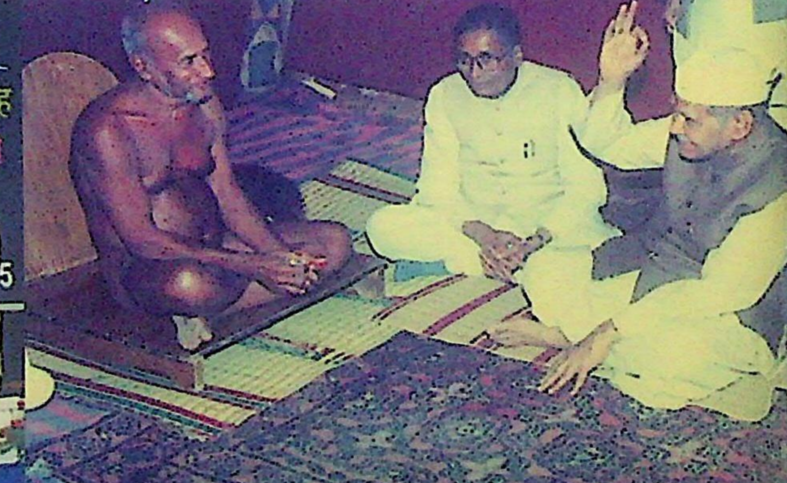

धर्म जोड़ता है, साम्प्रदायिकता

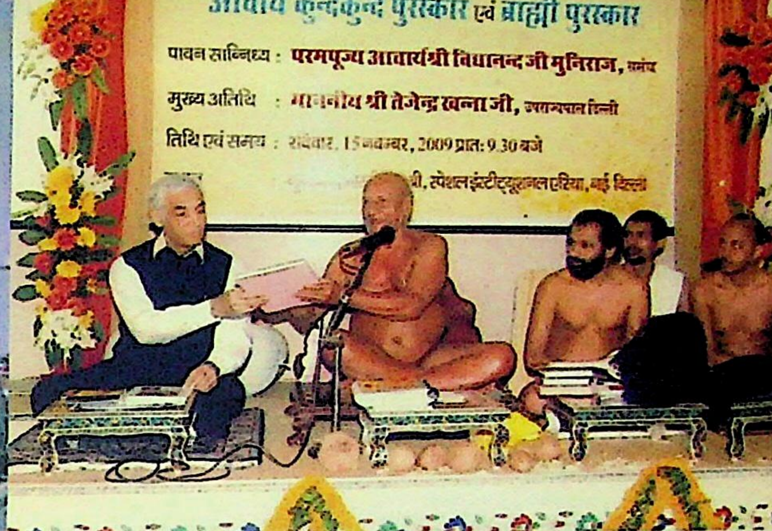


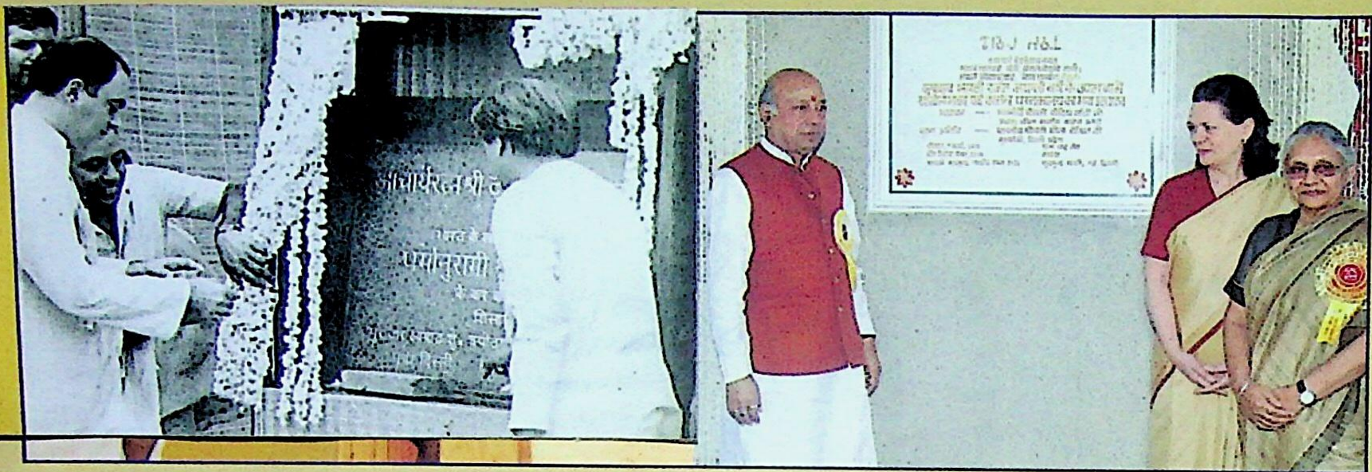

पुरस्कार' (वर्ष 2001)
द्वारा प्रवर्तित
श्रीमती सोनिया गांधी जी


जनसमाज द्वारा
पावन सान्निध्य
दिनांक 15 सितम्बर
श्री


मुनिराज के 79 वें जन्मदिवस-समारोह के मंगल-प्रसंग पर
आचार्य भद्रबाहु पुरस्कार
समर्पण - समारोह
स्थान: लिबर्टी




एवं ब्राह्मी पुरस्कार
पावन सान्निध्य : परमपूज्य आचार्यश्री विधानन्द जी मुनिराज,
मुख्य अतिथि : श्री तेजेन्द्र खन्ना जी,
तिथि एवं समय : 15 नवम्बर, 2009 प्रात: 9.30 बजे
स्पेशल इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली



'अज्ञानी का गुरु बनने की बजाय ज्ञानी का शिष्य बनना अच्छा है।'

—चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर

'जिसका कोई गुरु नहीं उसका जीवन शुरु नहीं।'

विगत 25 वर्षों से मैं पूज्य गुरुदेव श्वेतपिच्छाचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज के पावन सान्निध्य में हूँ और मेरा अनुभव है कि पूज्य गुरुदेव की कृपा से मुझे अपूर्व लाभ प्राप्त हुआ है। पूज्य गुरुदेव की विशाल दृष्टि ने मेरे जीवन में जो अद्‌भुत परिवर्तन किया है, उसके कारण मैं उनका एकनिष्ठ भक्त बनकर कार्य कर रहा हूँ। मैं तो इधर-उधर भी प्राय: नहीं जाता और इन्हीं से मुझे सर्वप्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है। सभी लोग गुरुदेव के अनन्य भक्त बनकर उनका लाभ प्राप्त करें यही मेरी मंगल कामना है। मेरा अपना मानना है कि जिसे जीवन में एक भी गुरु मिल जाए उसका कल्याण हो जाता है। शिष्य में भी गुरु के प्रति एकनिष्ठता और पक्की श्रद्धा होनी चाहिए।

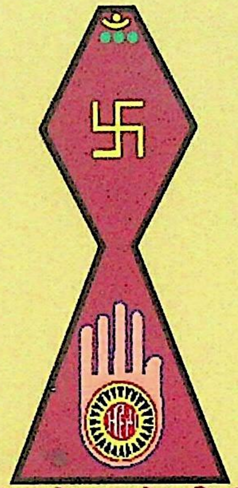
—सतीश चन्द जैन (SCJ)

ते गुरु मेरे मन बसो

''गुरुर्विधाता गुरुरेव दाता, गुरुः स्वबन्धुर्गुरुरत्नसिन्धुः।
गुरुर्विनेता गुरुरेव तातो, गुरुर्विमोक्षो हतकर्मपक्षः॥''

—(गीत वीतराग, 9/5)

गुरु ही विधाता है, गुरु ही दाता है, गुरु ही स्वबन्धु है, गुरु ही रत्नों (रत्नत्रय) का सिन्धु है, गुरु ही विनेता (मोक्षमार्ग के नेता) है, गुरु ही पिता है और क्या कहूँ गुरुदेव ही कर्मों का नाश करने में निमित्त है, इसलिए गुरु ही मोक्ष स्वरूप है।



‘अण्णोण उवयारेण जीवा’